रामकुमार भ्रमर

राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली

मूल्य : सात रुपये

1971 ; © रामकुमार भ्रमर

, नई दिल्ली, में मुद्रित

GHAR (Hindi Novel) *by* Ram Kumar Bhramar Rs. 7.00

लोक-नृत्य नाटकों की सभी प्रान्तों में परम्परा रही है—आज भी है। उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान आदि हिन्दी भाषा-भाषी प्रान्तों में नौटंकी लोकप्रिय कार्यक्रम है। विभिन्न प्रान्तों में इसके पर्याय कार्यक्रम हैं। यदि इन नाट्यों में नौटंकी की तरह विशिष्ट नाटक नहीं होते, तो इतना अवश्य ही है कि उनमें नौटंकी की तरह समूची नाट्य-व्यवस्था होती है।

महाराष्ट्र का अत्यन्त प्रचलित और लोकप्रिय नृत्य-नाट्य 'तमाशा' है। बम्बई, नागपुर, पूना आदि बड़े-बड़े नगरों से लेकर छोटे-छोटे गाँवों तक तमाशा देखा और सराहा जाता है। निम्न, मध्य और उच्च अभिजात्य वर्ग तक समान रूप से तमाशा लोकप्रिय है।

हिन्दी प्रान्तों के लोग ही नहीं, अनेक प्रान्तों के लोग महाराष्ट्र के तमाशा और उसके प्रकार से परिचित नहीं हैं। उसी प्रकार जिस प्रकार नौटंकी अपने क्षेत्र में बंधकर रह गई है। इस स्थिति का कारण सम्भवत: यही है कि हम—भले हिन्दी प्रान्तवासी हों अथवा किसी अन्य प्रान्त के वासी—एक-दूसरे के सम्बन्ध में न तो जानने के लिए उत्सुक रहे हैं, न ही कभी जानने का प्रयत्न किया है। बहुत हद तक हमारी ऐसी परस्पर गैर-जानकारी ही राष्ट्रीय एकात्मता का भाव पैदा होने में बाधक बनी है। दोषी कौन है—इस गहराई में न जाते हुए भी, यह तो स्वीकारा ही जा सकता है कि इस सबकी बहुत-सी जिम्मेवारी उस वर्ग-विशेष

पर है, जो लेखक, चित्रकार, पत्रकार अथवा राजनीतिज्ञ हैं।

तमाशा पूर्वकाल में केवल राजा-रईसों, जिलेदारों और पेशवाओं के मनोरंजन का विशिष्ट कार्यक्रम हुआ करता था। कालांतर में वह महलों की चहारदीवारियों से बाहर आकर जन-सामान्य का मनोरंजन बन गया और *आज वह विकसित रूप में सभी वर्गों का प्रिय हो चुका है।* उसे शासन ने सांस्कृतिक मान्यता भी प्रदान की है। 'तमाशा' के माध्यम से अब मनोरंजन के साथ-साथ शासन की अनेक कल्याणकारी योजनाओं का प्रचार भी किया जाने लगा है।

तमाशा-मण्डलियों और तमाशे के बारे में बहुत कम लिखा गया है। मराठी में भी संभवतः दो उपन्यास और एक-दो कहानियां ही लिखी गई हैं। हिन्दी में तो उसपर कुछ है ही नहीं। लगभग तीन-साढ़े तीन वर्ष पूर्व मैंने एक कहानी लिखी थी—'सच'। *यह कहानी बहुत पसन्द की गई थी। मैंने उस समय महसूस किया था कि तमाशा के बारे में हिन्दी* पाठक बहुत उत्सुक हैं और वे रुचि के साथ उस जीवन को जानना-समझना चाहते हैं। निश्चय किया था कि कभी तमाशा और उसकी मंडली पर उपन्यास लिखूंगा। बहुत अर्से तक ऐसा कर नहीं पाया। अब वही निश्चय 'काचघर' के रूप में आपके सामने है।

अपने पत्रकारीय जीवन के दौरान मुझे ३-४ वर्ष तक महाराष्ट्र में रहने का अवसर मिला है। उससे पूर्व और अब भी यदा-कदा महाराष्ट्र-दर्शन करता रहा हूं। तमाशा खूब देखा और गुना है। मंडलियों से *व्यक्तिगत सम्पर्क भी साधे हैं। वे फिल्में भी देखी हैं जो 'तमाशा' पर बनी हैं* या जिनमें किसी दृश्य-विशेष के रूप में तमाशा प्रस्तुत हुआ है।

तमाशा किसी विशेष कथा को लेकर नहीं चलता, जिस तरह नौटंकी चलती है। हां, तमाशा में अनेकानेक उपकथाएं चलती हैं। उन्हें कार्यक्रम में बड़ी सफाई के साथ एक-दूसरी से पिरोया जाता है। राजनीतिक, *सामाजिक चुटकुले भी अभिनीत होते हैं और उस दौरान नृत्य-गीत-संगीत* होता चलता है। रूपवती, आकर्षक नायिकाएं स्टेज पर विद्युत्-गति से नाचती हुई दर्शकों को मोहित करती हैं। सामान्यतः यह कार्यक्रम दो से तीन घंटे तक का होता है।

नौटंकी में काम करनेवाले लोग—स्त्री हों या पुरुष—एक विशिष्ट सामाजिक स्थिति में जीते हैं। उन्हें समाज में मात्र इतना ही स्थान मिलता रहा है कि वे 'खाने-कमाने' वाले लोग हैं, जिनका अर्थ समाज के लिए सिर्फ इतना है कि वे भीड़ का मनोरंजन करें? कई बार कुछ धनिकों की रंगीनियों का साधन बनें। तमाशावालों की हालत भी कुछ ऐसी ही है। यदि यह कहा जाए कि ऐसे वर्ग के सिर पर कलाकार के शब्द लाद देने की कृपा करनेवाले समाज और शासन ने उस कोहरे को उनके जीवन से हटाने की कोशिश नहीं की है, जिसमें उन्हें हेय दृष्टि से देखा जाता है तो गलत नहीं होगा। 'तमाशा के कलाकार' कहलाकर भी वे उस सामाजिक दृष्टि को नहीं हटा सके हैं या हट नहीं सकी है, जिसके तहत उन्हें लगभग वेश्या-बाजार के पात्र समझा गया है।

कांचघर में मैंने तमाशा-मंडलियों और तमाशेवालियों के जीवन पर सोचा है और लगभग उसी रूप में उन्हें पेश करने की कोशिश की है, जैसा पाया है।

हिन्दी में अनेक लोगों के मुंह से मैंने नौटंकी देखकर निकलने के बाद 'छि: छि:', 'गन्दा···', 'घटिया' आदि शब्द सुने हैं। तमाशा-दर्शकों से भी मैंने ऐसे ही शब्द सुने हैं। ये वे दर्शक होते हैं जो हॉल या पंडाल में बैठकर 'जीयो मेरी जान!', 'हाय, मार डाला रे!', 'ओय होय!'··· किस्म के उच्चारण करते रहते हैं, टोपियां उछालते हैं, आहें और सिसकियां भरते हैं। श्लील और अश्लील की ऐसी परिभाषाएं करनेवाले दर्शकों पर मुझे तरस आता है। शायद उन सबको तरस आएगा जो उनके इस दोहरे चेहरे से परिचित होंगे।

श्लील और अश्लील हमारे लिए मात्र इतने ही अर्थवान हैं कि हम अपने अनुकूल उसकी घोषणा कर सकें। ये दोनों स्थितियां हमने और हमारे समाज, समुदाय या जाति ने अपनी सुविधाओं से बनाई-बिगाड़ी हैं और अपने ही तरीके से उसे परिभाषाएं दी हैं। श्लील और अश्लील की हमारी समूची परिभाषाएं जिस्मों प्रदर्शनों, वाक्यांशों अथवा भावों और संकेतों तक सीमित हैं, जबकि मूलत: इन दोनों की पहचान हमारे नैतिक मूल्यों से होनी चाहिए। कपड़े पहनकर उच्च कहलाकर की जातिवासी

बेईमानी, चोरी, छल और झूठ उस जिस्मी नंगेपन से कहीं अधिक अश्लील होते हैं, जिसे स्टेज पर कोई नर्तकी प्रस्तुत करती है। भीड़ में बैठे हुए वे दर्शक, जो भावनाओं, विचारों और कार्यकलाप में सामाजिक, राज-नीतिक और नैतिक मूल्यों से गिरे हुए हैं, जिस्मी झांकी से अधिक अश्लील हैं।

'कांचघर' की कथा और पात्रों के साथ श्लील-अश्लील का प्रश्न ऐसे ही सामाजिक-नैतिक मूल्यों के साथ जुड़ा हुआ है। अब यह चुनाव करना आपके हाथ है कि क्या श्लील है और क्या अश्लील···!

मालावाई का बाज़ार,
ग्वालियर-१

—रामकुमार भ्रमर

बारह बजने में बीस मिनट और हैं।

रत्ना ने डरते-डरते चेहरे के करीब से चादरा हटाया। पास की चारपाई पर मुकुन्दराव पड़ा हुआ था। कमरे में लालटेन की मद्धिम रोशनी। वह मुकुन्दराव की ओर देखती रही। गरदन पर बल देकर उसे कुछ उठंग कर लिया था। लगातार देखने से नसों में हल्का-हल्का दर्द हो आया। पर वह आश्वस्त होने लगी थी कि वह सो गया है। उसने गरदन कुछ और टेढ़ी की—घड़ी देखी। टिक्...टिक्...टिक्...रात की खामोशी को चीरता हुआ, कमरे में बहा जा रहा यह एकमात्र स्वर उसे कुछ अनहोना-सा लगा।

उसने सन्देहपूर्वक मुकुन्दराव को दोबारा देखा, पहली बार के दृश्य से मिलान किया। वह शरीर को ठीक उसी तरह डाले हुए है ना, जैसा कि रत्ना ने पहली बार में देखा था।

सब कुछ ज्यों का त्यों था। तकिये और सिर के बीच दबा उसका बायां हाथ...चादरे को दबाए हुए दोनों पैर...पुराने, कच्चे मकान में चूहे के बिल की तरह खुला मुंह...ऊंचे परदे की तरह पुतलियों पर पड़ी हुई अधखुली पलकें...मुकुन्दराव सो रहा था। रत्ना ने विश्वास कर लिया कि वह सो रहा है। फिर यह सोचकर वह जरा आशंकित हुई कि पता नहीं, उसकी नींद पर्याप्त गहरी है या नहीं? गहरी नींद में वह खर्राटे भरता है और खर्राटे अभी शुरू नहीं हुए हैं।

बीस मिनट बच रहे हैं···उसके बाद खर्राटे शुरू हो जाने चाहिए। व रात की खामोशी टूटने लगेगी और घड़ी की नाजुक, महीन आवाज ो दबाती हुई फकी-ई-ई···फकी-ई-ई···कमरे में फैल जाएगी। गहरी नींद मुकुन्दराव कैसा अहसास देता है? जैसे उसके धड़ से ऊपर, चेहरे की गह अलसीशियन कुत्ते का मुंह रखा हुआ हो···हूं···हूं···हुफ्फ!··· हुफ्फ···हुफ्फ!···

सहसा रत्ना का मन हुआ—उठे, धीमे से किवाड़ खोले, और बाहर आंगन में रखी हुई कुल्हाड़ी लाकर इस कुत्तेवाले चेहरे को फाड़ डाले।

मगर बालाजीराव दस-पांच दिन की देर और कर देता तो शायद रत्ना से यह हो जाता। इस कुत्तेवाले चेहरे को वह कुल्हाड़ी या किसी भारी पत्थर से कुचल ही डालती···गिच्च्···गिच्च्!···खून से सन जाता वह। कुछ न बचता फिर। न वे जलती और घूरती हुई आंखें, न घुर्राहट के साथ भिंचते हुए होंठ।

पर अब क्या है? बीस मिनट···और वह कुत्तेवाले चेहरे से दूर हो जाएगी।

उसने फिर से घड़ी देखी। बीस नहीं, अब सिर्फ दस मिनट हैं··· बेबसी और ऊब में लिपटी हुई एक गहरी सांस खींचकर वह चारपाई पर लेट रही। मुकुन्दराव को देखा। वह सो रहा है···और उसकी नींद अब गहरी भी हो गई है···फकी-ई-ई···फकी-ई-ई···उसके नथुने फूलने-फैलने लगे हैं। दस मिनट होने न होते, रत्ना के निकलते न निकलते, जरूर वह और भी गहरी नींद में डूब जाएगा···घुर्र···घुर्र···बहुत गहरी नींद।

कमरा बन्द है चारों ओर से। क्रमवार पहली, दूसरी, तीसरी और चौथी दीवार पर घूमकर उसकी नजर दरवाजे पर आ ठहरी। इसे खोलते वक्त बहुत सावधानी बरतनी पड़ेगी। कभी-कभी यह चरमराने लगता है··· एक किनारे पर हाथ लगाकर किवाड़ ऊपर की ओर उकसाना होगा··· रत्ना ने दिन में ही सब कुछ सोच-समझ लिया था। दरवाजा खोलने का दो-तीन बार रिहर्सल भी कर लिया था। फिर वह तैयारी में लग गई थी। बालाजीराव ने आज रात का ही वक्त दिया था। घर के सभी लोगों की निगाह बचाकर उसने अपनी जरूरत के कपड़े बिस्तरे के नीचे दबा लिए

ये। दो बनारसी साड़ियाँ···ब्लाउज···चोलियाँ···सब···

उसने बिछौने पर पैर रगड़कर उन्हें टटोला। हूँ···ठीक तरह रखे हुए हैं। चारपाई के नीचे की ओर झुककर उसने चप्पलें देख लीं। नई-निकोर···लालटेन की नीची की हुई बत्ती बहुत धीमी रोशनी दे रही है, लेकिन तो भी ये चप्पलें कैसी चमक रही हैं! एक साल ऊपर हो गया है इन्हें। यदि अवसर इस्तेमाल की जातीं तो शायद [illegible] चुकी होतीं, पर अब तक उनका कुछ भी नहीं बिगड़ा है। बिल[illegible]ल नई हैं। एक साल कुछ महीने ऊपर! रत्ना ने गहरी सांस [illegible]ची। इतने लम्बे अरसे में वह कहीं बाहर नहीं गई। एक-दो मौकों [illegible] छोड़कर इस घर से निकल ही नहीं सकी। और वह निकलना भी क्या [illegible]ई निकलना था?···निकली भी थी तो कुत्ता साथ में···रत्ना के हर [illegible]दम को चक्कर में लेता हुआ अल्सेशियन कुत्ता! एक बार ज़रा पीछे [illegible]ड़कर देखना चाहा था रत्ना ने और कुत्ता भौंका था···

"क्या बात है?···क्या देखती है?···रास्ता आगे है या पीछे?"

(हूँ···हुफ्फ!···भौं-भौं···!)

रत्ना सहम गई थी। गरदन झुकाए चलने लगी। शरीर में कम्पन [illegible]ठ आया था। कुत्ता फिर से उसका हर कदम घेरता हुआ···साथ बढ़ता [illegible]या!

रत्ना के होंठ सूख आए हैं उस दिन को याद कर। वह निकलना भी [illegible]या निकलना था? ये चारों ओर खड़ी हुई दीवारें···बिलकुल एक डिब्बे [illegible]ी तरह बन्द। हरदम इस कमरे में और इसके इर्द-गिर्द एक कुत्ता घूमता [illegible]हता है। रत्ना कहाँ जाती?

उसने पुनः घड़ी देखी। बालाजी ने कहा था—"ठीक बारह बजे मैं विश्वनाथ बाबा के मन्दिर पर पहुंच जाऊंगा। तू ज़रा भी देर मत करना। [illegible]या समझी?"

"समझ गई।" रत्ना बोली थी, "ठीक बारह बजे।"

"हां।" और बालाजीराव 'पुड़िया' देकर चला गया था। देव के लिए फूलों की पुड़िया लेकर वह रोज़ सुबह तड़के ही आ जाया करता था। इतनी सुबह कि तब तक घर में कोई नहीं जागा होता था। न सखूबाई, न

मारोतीराव और न मुकुन्द···अलसीशियन कुत्ता !···

बालाजीराव मन्दिर पर पहुंचने ही वाला होगा। हो सकता है कि पहुंच ही चुका हो। उसे तो वह सब करना नहीं है जो रत्ना को करना है।···रत्ना को चलना चाहिए। उठने से पहले उसने चौकन्नेपन से चारों ओर देखा। कुछ नहीं है···पसरा हुआ कुत्ता···घुरं···घुर्र···बीच-बीच में टिकटिका उठती घड़ी···और डरी हुई उदास रोशनी। रत्ना धीमे-धीमे चारपाई से उठी, बिस्तरा उलटकर साड़ियां-ब्लाउज निकाले, झुककर चप्पलें उठा लीं और फिर दबे पाव···

'हूं-ग्रूं-ग्रू···' गुर्राहट बन्द !···चारपाई की चरमराहट।

मुकुन्दराव !···अलसीशियन कुत्ता।···रत्ना को लगा कि उसे धरा जाएगा। फुर्ती से वापस मुड़ी। कपड़े फिर से बिछौनों के नीचे डाले और बदहवास चारपाई पर लेट रही। कपूर की तरह बालाजीराव, विश्वनाथ बाबा का मन्दिर और सब कुछ दिलो-दिमाग से गायब हो गया था ?···सिर्फ रहा एक खयाल—मुकुन्दराव ! उसका घरवाला। नहीं-नहीं !···उसका पहरेदार···नहीं !···पहरेदार कुत्ता !

रत्ना ने आंखें मूंद ली थीं। फिर भी लग रहा था कि बहुत कुछ है, जिसे वह साफ-साफ देख पा रही है···मुकुन्दराव झपटता है, उसके आंगन की ओर बढ़े कदम पल-भर में रत्ना के सीने, पीठ और मुह पर होते हैं··· फिर रत्ना की मुख्य चीखें।···मुकुन्दराव उसे अपने कमरे में खींच लाता है और रत्ना धरती पर रगड़ती हुई बेबस खिंची चली आती है···और कमरे में फिर लातें, घूंसे, तमाचे !···

रत्ना का दिल जोर-जोर से धड़कने लगा। इतनी जोर से कि लगा उछलकर सामने आ गिरेगा—धरती पर।···और तभी वह कुत्ता-आदमी दरवाजा खोलकर बाहर निकलेगा। लार गिराता, हाफता हुआ। वह उसे झिंझोड़ डालेगा।···हूं···हूं···हफ्फ !···हफ्फ ! मुझे मालूम था कि यह ! एक न एक दिन जरूर होगा !···और फिर रत्ना के दूर पड़े हुए ... को गड़ाप से खा जाएगा।

रत्ना ने अविश्वास से मुकुन्दराव की ओर देखा। उसे यह बिलकुल ... लग रहा है कि मुकुन्दराव ने गुर्राहटें बन्द कर दी हैं। शाय

इसका मतलब है कि रत्ना ने यह वक्त सो दिया है, पव
द्वार अनायास ही खुल गया था⋯फिर वही कैद⋯दीवारें⋯
ाजरे की पहरेदारी करता कुत्ता⋯मुकुन्दराव, मारोतीराव, ग
मरा परवाला, जेठ-जेठानी।

परवाला ?⋯जेठ-जेठानी ?⋯रत्ना को अपने इस सवाल
ो तबीयत भी हुई, रोने की भी। क्या रत्ना सचमुच ही किसी
ली हो सकती है या उसके कोई जेठ-जेठानी हो सकते हैं ? कि
फी का सवाल !⋯तमाशेवाली औरत का भी कोई कुछ हो
ठ !⋯वह अकेली होती है—सिर्फ वह ! यानी सिर्फ रत्ना।
हीं। न मां-बाप, न भाई-बहिन, न पति, न कोई नाता-रिश्ता !

फिर कौन है मुकुन्दराव ? कौन है मारोती और सखूबाई ?
थे ?

सिर्फ वहम !⋯रत्ना के पागलपन ! पिंजरे के पहरेदार !

और यह घर ?

घर ? तमाशेवाली औरत का कोई घर होता है भला ?⋯
म है। सिर्फ पिंजरा !

और रत्ना ?⋯

तमाशे की औरत। बेबस मैना। जिसे मालूम नहीं था कि व
जिसे यह भी नहीं मालूम था कि घर नाम का एक पिंजरा हो
पिंजरे के कुछ पहरेदार होते हैं⋯आज़ाद पंछी पिंजरों में बन्द
ते हैं और उन्हें कुछ लोग मनोरंजन के लिए अपने कमरे में टां
ा आंगन में अरगनी पर लटका देते हैं और खाली वक्त में
ाते हैं।

अन्धेरे में एक बड़ा—खूब बड़ा पिंजरा उग आया है। सुनहरे
उसकी बुनाई। फिर पिंजरे में एक मैना⋯मैना के सिर पर रत्
⋯डरी हुई मैना। छटपटाती हुई। सुनहरे पिंजरे के पार घूमता
न्दराव का चेहरा अपने चेहरे पर रखे हुए। बस, मैना निकले औ
दबोचले !⋯

रत्ना का मन रोने को हो आया। पर रोया भी नहीं जा सकता

जाएगा और पूछेगा कि क्यों रोती है ?

रत्ना रो भी नहीं सकती ! उसने एक आह भरी और फिर से करवट लिए पड़े मुकुन्दराव को देखा। जाग रहा है···नहीं जाग रहा है !···

क्या सोचेगा बालाजीराव ?·· समझेगा कि रत्ना ने उससे छल ज्या। उसे क्या मालूम कि रत्ना कितनी बेबस हो गई है। वह घड़ी की ोर देखने लगी—बारह बज चुके हैं। दस मिनट ऊपर।

अब ?···ज़रा हिम्मत करे और चल पड़े। अभी बालाजीराव इन्त- ार ही कर रहा होगा। हां, चल ही पड़े रत्ना···

नहीं चल सकेगी। कैसे चल सकती है ?

फिर कभी विश्वास नहीं करेगा बालाजीराव ? बिलकुल मुकुन्दराव न जाएगा। कहेगा—'तमाशेवाली औरत का क्या विश्वास ! वह रसाली ायत का दफ्तर होती है। मोची से लेकर पंडित तक उसमें जा सकता ! ···वह सबकी, और किसीकी नहीं !'

···बालाजीराव भी ऐसे ही कहने लगेगा। हथेलियां मसलता हुआ अंधेरे में घूम रहा होगा। ज़रा-सी आहट होते ही चौंक जाता होगा—यह सोचता हुआ कि शायद रत्ना आ रही है।···

और रत्ना यहां है। कुत्ते की पहरेदारी में।

सवा बारह हो चुके।···थोड़ी देर बाद साढ़े बारह हो जाएंगे, फि एक, दो, तीन···और आखिर में सवेरा। अलस् सुबह, वह वक्त जब बालाजीराव पुड़िया लेकर आया करता है। पर आज नहीं आएगा वह।

रत्ना ने फिर से सांस ली और मुकुन्दराव की ओर देखा। वह उसी तरह करवट लिए पड़ा था और उसकी नींद के प्रमाण खर्राटे गायब थे।

रत्ना ने सोना चाहा, पर क्या सो सकेगी वह ? रत्ना ने चाहा कि उठकर पानी पिए···पर यह भी काफी कठिन लगा उसे। एक बार इसी तरह आधी रात को पानी पीने के लिए उठी थी और झट से जाग गया था मुकुन्दराव—"क्या बात है ?"

"कुछ नहीं। पानी···"

"हूं।"

और फिर ठीक तरह पानी भी नहीं पी सकी थी वह। दो-चार घूं

गले से नीचे उतारे थे और मुरदे की तरह चारपाई पर आ गिरी
सो गया था, रत्ना देर तक समझती रही थी कि वह नहीं सोया
लगता था कि वह कभी सोता ही नहीं है।

रत्ना के गले में कुछ चुभने लगा है। शायद प्यास काट रही
साँस में तड़कन होती है। पीना ही पड़ेगा पानी।

वह साहस कर उठ पड़ी। इतना भय भी कैसा कि प्यासी
जाए ! मद्धिम रोशनी में दबे पैरों वह मटके तक आई। गिलास भ
गटागट गले में पानी उंड़ेल लिया। यह इतना यांत्रिकी हुआ
सोच भी नहीं सकी कि उसने पानी पी लिया है। फिर से चारप
आ गिरी।

कभी रत्ना को अपनी स्थिति पर अविश्वास होने लगता है
सच ही वह रत्ना है ?...तमाशे की हंसिनी ?...उन्मुक्त हृदय !...
शरीर !...उन्मुक्त नजरें !...शायद झूठ है यह सब। झूठ लग
है। कुछ ऐसे, जैसे आज तक जो कुछ बीता था वह सब छल था...

छल था यह, कि वह कावेरीबाई की बेटी है। यह भी छल थ
वह हजारों लोगों की भीड़ में गीत के बोलों की तरह आबाद घूमती
यह भी छल था, कि वह तमाशे की सबसे आकर्षक युवती थी...
छल !...सब दिखावा !...सब झूठ !...पर कितना मोहक, प्यारा
सुहावना झूठ। रत्ना सोचती है। गले तक यादों से भर उठती है...

तमाशा !...मंच...कावेरीबाई...माला...और हजारों की भी
घुमा पंडाल और पंडाल में बिखरी आहें...और आहों को रौंदती नि
हंसिनियां...

*गांव। उनका घुमा आसमान। हवाएं।...और गांवों के घुले आ
मान की हवाओं में घुले हुए तमाशा-पार्टियों के कई नाम। गुमावदा
पार्टी, रुक्मिनीबाई की पार्टी, मैनकाबाई की पार्टी... पर इन सबमें अ
एक नाम था—कावेरीबाई की पार्टी।*

कावेरीबाई की पार्टी का मतलब होना था, एक जबर्दस्त भीड़...

दूर, दसियों कोस के आदमियों की पंडाल में जुट आई भीड़ ! सातारा ताल्लुके से लेकर वर्धा तक मशहूर थी कावेरीबाई की पार्टी। पार्टी माने संच। संच में दो हीरे—रत्ना और माला। इन दोनों का मतलब होता था सातारा से वर्धा तक फैला हुआ आहों का कोहरा···ठण्डी सीत्कारें··· मार दिया हसिनियों ने !—हसिनिया शेरों का कत्ल करती थीं। बगैर चाकू-छुरे···सांझ ढलती, पंडाल के बाहर शादी का-सा शोर फैल जाया करता—'दे भई रुपये वाला !···रुपये का नहीं है ?···अच्छा-अच्छा, दो का दे !···दो का भी नहीं है ? खलास !···यार, पांच का दे ! दस कोस चलके आए हैं तो यों ही थोड़े लौट जाएंगे !···'

रात के आठ बजते-बजते पंडाल भीड़ से भर जाता। ढेरों फरमायशें होने लगतीं। स्टेज चौड़े-चौड़े तख्तों को जोड़कर बना होता। गुलाबी चादरें परदों की जगह लटकी होतीं। ऊपर से खुला मंच···ठण्ड का मौसम हो तो भी खुला। देखनेवाले लिहाफ तक साथ ले आया करते। कान भारी-भारी फेंटों में बन्द। आंखें स्टेज पर गड़ी हुई—कील की तरह। पांच-दस मिनट में ही दोनों हंसिनियां स्टेज पर उतर आएंगी···छम्।··· छन्···न्···न्···

ऊई रे···हुईश्श्···! हुईश्श्···

जादूगरनियां !···कावेरीबाई के संच की जादूगरनियां !···पतली चुभती हुई तलवार जैसी भौंहें···ठेठ ठर्रे का नशा देनेवाली आंखें··· हर कदम के साथ थिरकते उभार—जैसे, सारे पंडाल को बुलावा—'देखते क्या हो ?··· आओ !···आओ !···'

सातारा से वर्धा तक हर तालुका जानता था कि कावेरीबाई अब थकने लगी है। लेकिन तब भी उसके संच की भीड़ में कमी नहीं हुई। दरोगा, तहसीलदार, पटेल और बड़े-बड़े अफसर पांच रुपये की लाइन में ऐसे खामोश बैठे रहते, जैसे पालतू खरगोश !···दुनिया कैसी रंगीली है। ये गुलाबी परदे, ये घुंघरू···चुनौतियों पर चुनौतियां !

एक बार संच मुलताई गांव गया। तब की बात है जब रत्ना और माला, दोनों जादूगरनियां छोटी थीं। नये आम-सी। खट्टी, चिरपिरी और ताजा। कावेरीबाई दोनों को नजरों के तारों में बांधे रखती थी।

ार से अंकुश का ताला। देखनेवाले देख लें—छूना मना है! रत्ना और
ाला के लिए सब कावेरीबाई, मंच, पंडाल, भीड़, आहें, कोहरा···सब
ुछ सिर्फ कौतुक थे। कामेडियन चिमनराव, कावेरीबाई का घरवाला—
हते थे कि वह घरवाला है—अण्णाजी, कावेरी की अन्धी बूढ़ी बहिन
यामाबाई, सबके कार्यकलाप स्वाभाविक होते हुए भी अस्वाभाविक-से
लगते। मुलताई में पहली बार रत्ना को लगा था कि ऐसा बहुत कुछ
है उसके मंच में, जिसे देखकर भी वह देख नहीं सकती। अब तक उसने
देखा था कि कावेरीबाई नाचती है। कामेडियन चिमनराव मसखरी करता
है। स्टेज के पीछे की ओर बैठे-बैठे जब रत्ना को नींद आने लगती है तो
अण्णाजी—उसका बाप—उसे तम्बू में ले जाता है और थपकी देकर
सुलाता है। श्यामाबाई सुपारियां काटती जागती रहती है। सुबह कावेरी
जब जागती है तब उसका चेहरा पिटा-सा रहता है। आंखें सुर्ख। अब तक
यही देखती रही थी रत्ना।

पर मुलताई में उस दिन जो देखा, उसे देखकर लगा था कि पहले जो
कुछ देखती रही थी, झूठ था। सच वह था, जो उसने उस बार देखा।
आधी रात को। पर सोच में पड़ रही थी। समझ कुछ भी न सकी।
जरूरी तो नहीं होता कि जो देखा जाए, वह समझ ही लिया जाए?
अरसे तक मुलताई का वह सब देखा सिर्फ देखा हुआ ही रहा—समझ से
बाहर···

खेल शुरू हुआ—रात दस बजे। पंडाल मैदान में लगा था। चारों
तरफ बांस के लम्बे-लम्बे खम्भों के सहारे शामियाना तना हुआ था।
बीच में टाट-पट्टी। स्टेज ईंटों पर रखे तख्तों का। सामने की टाट-पट्टियां
बिलकुल स्टेज से छूती हुई। स्टेज तीन तरफ से चौड़ी-चौड़ी चादरों का
घूंघट ओढ़े हुए। एक गैस की लालटेन बाईं तरफ, एक दाईं तरफ।
टाट-पट्टियों में दो टिकट—स्टेज के करीब होता हुआ, पांच रुपये का।
उसके बाद वाला दो रुपये का, फिर एक का। एक के दर्शक धरती पर।
जैसा दाम, वैसा काम। एक रुपयेवाले उस आंख का मजा नहीं ले सकते
जिसे कावेरी एक कौंध की तरह दबाती है। वे सिर्फ देख सकते हैं कि
एक औरत है, जो दूधिया रोशनी में नाच रही है—कावेरी! शराब की

नशीली बोतल !···

कावेरी स्टेज पर आई थी। दर्शकों ने तालियां बजाकर उसका स्वागत किया। अण्णाजी दौड़ा-दौड़ा गया और स्टेज के पिछले किनारे पर एक और गैस की लालटेन सरका दी—तीसरी लालटेन। एक ओर किनारे में समाई हुई थीं रत्ना और माला। उनसे कुछ आगे हरमोनियमवाला, तबलावाला, सारंगीवाला···

कावेरीबाई के पैरों में घुंघरू !·· छम् छन्·· न्···न्···कावेरी स्टेज पर। पहले कदम के साथ ही वही तालियां···शोर···

कावेरी ने मादक नजरों से दर्शकों की ओर देखा। झुकी, एक अदा से आदाब का हाथ उठाया गोरा, सुडौल हाथ !

लोग फिर चिल्लाए !

कावेरी ने मुसकराकर अपनी हथेली हवा में चूमी और फिर वह चूम दर्शकों के चेहरों पर छिड़क दी। भीग गए लोग !···कुछ आहें, रिमार्क, फब्तियाँ, सीत्कार !·· घायल दिलों की भीड़ !

कावेरी ने तख्ते पर एड़ी ठोकी। तबले पर पहली थाप पड़ी। सारंगी का तार खिंचा हारमोनियम पर अंगुलियां तैरीं !···और फिर एक सुरीली तान—पडाल और पंडाल से बाहर तक बहती हुई।

माभी पुनाची वेणी···
माभी पुनाची वेणी···
पहा पहा बहिणी
कशी दान-दान ![1]···

गरदनें हिलने लगीं। कावेरीबाई के घुंघरू उछल-उछलकर पांच रुपयेवालों के दिल पर चोटें मारने लगे। आहें, कराहें,···

अण्णाजी मुसकराया। रत्ना कांपने लगी थी। रोज कांपा करती थी। अण्णाजी ने उसे झकझोरा, "अभी से डोली है, बेड़ी।[2]···तमाशा देख।"

---

१. देख, सखी ! मेरी पूनों-सी चोटी कितनी सुन्दर और प्यारी लगती है।
(एक लोकप्रिय मराठी गं'वार-गीत)

२. बेड़ी : पगली

रत्ना ने उनींदी पलकें खोल लीं। देखने लगी। कावेरीबाई गीत पू
कर रही थी। पंडाल में सिर्फ आहें-कराहें थीं कि तभी कामेडियन चिम
राव प्रकट हुआ। शराब के नशे में लड़खड़ाता हुआ। कावेरी के साम
पहुंचा। उसने जबड़े भींचे। बोला, "जीयो, मेरी जान!"

"हिश्श!…" कावेरी ने शरारत से कहा। छिटककर दूर हो गई।

एक घुटना स्टेज पर लगाकर और सीने पर बायां हाथ ठोकते हु
चिमनराव ने दायां हाथ एक झटके से उसकी ओर फेंका—इस हाथ
गजरा था। चमेली के फूलों का गजरा। महक रत्ना के नथुनों तक
गई।

"आज्जा!…आज्जा, मेरी फुलझड़ी!…" चिमन चिल्लाया

दर्शकों में हंसी के ठहाके उठे—रिमार्क-घुले ठहाके।

"हिश्श!…" कावेरी ने फिर शरारत की। कूल्हा कुछ मादक ढं
से हिलाया। कहा, "परे हट्!…

अण्णाजी उठा। उठने से पहले उसने रत्ना को झकझोर डाला
वह रह-रहकर निंदिया रही थी। माला से कहा, "इसे देखना। सो
जाए।… मेरा 'पारट' आता है!"

"ठीक है।" माला की आंखें नहीं झपक रही थीं। वह स्टेज की
ओर बराबर देखे जा रही थी। कावेरी ने सख्त हिदायत दे रखी है—
"अब तू छोटी नहीं है। धन्धा समझना है। बरोब्बर तमाशा देखा कर
समझी क्या!"

"अच्छा।"

"और तब से बरोब्बर तमाशा देखती थी वह। हर बोल, हर थाप
हर मुद्रा गले उतार लेती। आज भी उतार रही है। जानती है कि अब
उसके बाप अण्णाजी का 'पारट' आ गया है—स्टेज पर जाने के लिए
तैयार खड़ा है…

अण्णाजी ने एक बोतल—खाली बोतल उठाकर कोट की जेब में
डाल ली। शराबी का पार्ट करना है उसे। कोल्हापुरी चप्पल। सफेद धोती-
कमीज, सूती कोट। मेकअप चेहरे पर मूंछ नहीं है, पर मूंछ बना दी
गई है।

स्टेज पर चिमनराव मसखरा मसखरी कर रहा था। वह लोटपोट होने लगा, "तेरी खातिर मैं अमरीका से आया हूं, मेरी जान !·· ऐसे काहे को तरसाती है मुझे। प्राज्जा !···प्राज्जा !···"

कावेरी ने उसकी ओर जीभ निकाली, "ऊंह !···" फिर अंगूठा खड़ा किया।

"ठेंगा बता रही है।···" दर्शक चिल्लाए, "क्यों नहीं बताएगी, भाई ! कावेरीबाई है। उसे कावेरीबाई कहते हैं। हुस्न की रानी !···"

चिमनराव गाने लगा—

"प्राज्जा प्रो प्राज्जा···प्राज्जा, मेरा बरबाद

मोहब्बत के सहारे —ऐं-ऐं···

है कौन···(हिच् !···)"

"साला पिए हुए है !" कोई दर्शक चिल्लाया।

"हां, बहुत पिए हुए है।"

"और कावेरीबाई इठलाती हुई बाल संवार रही थी। दर्शकों की तरफ़ देखती हुई। चिमन की ओर से बेपरवाह।

चिमन धरती पर लोट गया···हिच् !···हिच् !···कई हिच-किया।

अण्णाजी ऐण्ट्री लेता है। लड़खड़ाता हुआ। अजीब-अजीब हरकतें करता हुआ।

माला ने रत्ना को फिर से कुरेदा, "देख !···उधर देख। बाबा 'ऐक्टींग' करता है, देख ना !"

रत्ना देखने लगी। अब पलकें नहीं झपकेंगी। जब अण्णाजी और चिमन स्टेज पर होते हैं, तब रत्ना को नींद नहीं आती। उनका काम ही ऐसा होना है कि नींद न आए। कावेरी का नाच रत्ना के लिए रसहीन है। उसकी सारी अदाएं, मुसकराहटें, गला, थिरकनें···सब बेकार ! रत्ना को कुछ भी नहीं भाता। उसे लगता है कि ये जो बड़ी भीड़ 'हाय-हाय, होय-होय' करती है, पागल है। मज़ा है तो बस अण्णा और चिमन के पार्ट में।

अण्णा झूमता हुआ चिमन को सहारा दे रहा था। चिमन को उठाते

उठाते हुए गिर पड़ता। जनता 'हो-हो' कर खिल्ला उठती। ठहाके ही ठहाके।

"ये कावेरीबाई का घरवाला है।" जनता में से कोई बोला।

अण्णा जनता की ओर तनकर खड़ा हो गया। डिगता हुआ। लड़-खड़ाती हुई आवाज में जवाब दिया, "हां, है। कावेरी का घरवाला नहीं है तो क्या तुम्हारा है ?"

ठहाके ही ठहाके !

अण्णा ने मसखरी ऊंची की। फिर से चिमन को उठाने लगा। जैसे-तैसे उठ खड़ा हुआ वह। दोनों में बातचीत—मसखरी पर मसखरी। कावेरी उसी तरह इठलाती एक ओर खड़ी है।

"तू कौन है ?"

"तू कौन है ?'

"मैं चिमनराव !···समझा क्या ?···चिमनराव !"

"अण्णाजी !···अण्णाजी महादेवराव कोल्हापूरवाला !"

"अच्छा, तू अण्णाजी है ? ··" चिमन ने लड़खड़ाते हुए कहा। कावेरी की ओर इशारा किया, "इसका घरवाला है—हजबण्ड ! ऐं ?"

"हां हजबैण्ड। घरवाला।···ऐ, मेरा जोरू है।" लड़खड़ाते हुए ही अण्णाजी ने जवाब दिया।

"ठीक है।" चिमनराव ने हाथ आगे बढ़ाया, "महादेव अण्णाजी शोलापूरवाला···ह्वेरी ग्लैड टु ··सी यू !"

"गल्ती बोलताय। मैं अण्णाजी महादेवराव कोल्हापूरवाला।"

"अच्छा-अच्छा। ठीक है। तुम बालाजी कोल्हाराव अण्णापूर-वाला !"

"नहीं-नहीं, मैं···"

"अच्छा-अच्छा, सब ठीक है।"

"ठीक है।"

"तुम किधर जा रहा है ?"

"मैं घर जा रहा हूं।" अण्णाजी ने बताया। अंगुली से कावेरी की ओर इशारा किया। बोला, "देखते हो, वह मेरी जोरू है। उसके जाते

बखत कमरे में बन्द कर गया था। देखता है ना। दरवाजे पर ताला पड़ा हुआ है।"

चिमन देखता है, "हां, ठीक है। पड़ा हुआ है। पर तू अपुनी वाइफ को ताले में बन्द क्यों करता है ?"

"तू मूर्ख है। समझता नहीं।" अण्णा उसके कान के पास फुसफुसाता है, पर यह फुसफुसाहट ऐसी है कि स्टेज के पार जनता तक पहुंच जाए। कहता है, "वह बहुत हसीन है ना। हो सकता है कि हमारे जाने के पीछू इधर किसी नौजवान से इसका मछली-कांटा हो जाए ! समझा क्या ?"

"अच्छा-अच्छा। समझ गया।" चिमन गरदन हिलाता है। गरदन खुजलाता है। कहता है, पर मुझे विश्वास नहीं बैठता है कि तुझ जैसे फड़तूस आदमी की वाइफ हसीन हो सकती है।

अण्णाजी हंसता है। फिर कहता है, "विश्वास नहीं है ?"

"नहीं है।"

"अच्छा, ठीक। मेरे साथ चल। मैं तुझे अपनी जोरू दिखाऊंगा, पीछू तू विश्वास करेगा।"

"चल।"

"हां चल !"

दोनों लड़खड़ाते हुए कावेरी और अपने बीच एक विशिष्ट दूरी बनाकर खड़े हो जाते हैं।

रत्ना और चम्पा मुग्ध भाव से देखती हैं। अब काम गूढ़ होने लगा है। माला तो फिर भी थोड़ा-थोड़ा समझ लेती है, पर रत्ना नहीं समझ पाती। इस सीन को दसियों कार्यक्रम में देख चुकी है। लोग ठहाके मारते हैं, पर वह समझ ही नहीं पाती। न जाने क्या क्या-क्या कहते रहते हैं अण्णा और चिमनराव।...रत्ना नहीं समझ पाती।

माला के होंठो पर पहले से ही मुसकराहट तिर आई है।

अण्णाजी ने आवाज दी, "कावेरी !...सुनती है ? कावेरी...ई !"

दूसरी ओर से कान पर हाथ लगाकर जनता की ओर मुंह किए हुए कावेरी ने इठलाकर इस तरह कहा, जैसे बीच में दीवार हो, "हां। सुनती

हूं ताला खोलो ना !"

दर्शक समझ गए कि बीच में दीवार है। दीवार में दरवाजा। दरवाजे में ताला।

अण्णाजी जेबें देखने लगा। ताली गुम हो गई है शायद। जल्दी-जल्दी जेबें देखने लगा।

"क्या हुआ ?···कीली नहीं है क्या ?" चिमन ने झूमते हुए प्रश्न किया।

"हां। लगता है कि खो गई।"

"तेरी कीली खो गई ?"

"हां।" निराशा से अण्णा बोला।

"तो फिर अपनी औरत का·········महादेव अण्णाजीराव शोलापुरवाला ?" *चिमन ने पूछा।*

"हां, कैसे खोलूंगा ?" भोलेपन से चिमन से अण्णाजी ने कहा।

"फिक्र मत कर !" चिमन बोला, मैं अपनी कीली से उसका······"

दर्शकों में ठहाका लगा···। फिर ठहाकों का एक सिलसिला। कावेरी चिमन, और अण्णाजी बड़े भोलेपन से दर्शकों की ओर देखने लगे हैं। *माला भी हंस रही थी··· रत्ना हैरान! ऐसा क्या हो गया है कि हंसा जाए ?* वह कभी स्टेज और कभी दर्शकों की ओर इस तरह देखती है, जैसे वे सब मूर्ख हैं।

"दर्शकों में से एक-दो टिप्पणियां होती हैं, "साला बदमाश ! अपनी कीली से दूसरे की औरत का······है।

"हां, देखो तो साला ! कैसा लुच्चा !"

ठहाके ही ठहाके !

कावेरी ने ठहाके थमते ही फिर से एक मज़ाक जोड़ दिया। बोली, "कौन है तू ?"

"मैं चिमनराव। तेरे हसबण्ड का मित्र।···क्यों, है ना ?" उसने अण्णाजी की ओर देखकर कहा।

"हां। है।"

"तो फिर देखता क्या है, जल्दी खोल न ताला !"

रत्ना ने पलकें मूंद लीं।

अण्णाजीराव और चिमन एक-दूसरे के आमने-सामने पालथी-मारकर बैठे हुए थे। उनमें व्यवसाय की बातें होने लगी थीं। चिमन बोला, "आज हाउस फुल गया है।"

"हां। कल भी जाएगा शायद।"

"कल का कोई भरोसा नहीं है।"

"क्यों ?"

"अभी महीने-भर पहले ही इस गांव से गुलाबबाई की पार्टी गई है।"

"उससे क्या होता है ?"

"सब होता है। गुलाबबाई के पास अब एक नई चीज है। कहते हैं, बड़ा कड़ाके का डान्स मारती है वह छोकरी !" चिमन ने तर्क किया।

"है तो क्या हुआ ?" अण्णाजी ने कह जरूर दिया, पर स्वर में कुछ कम्पन था। गुलाबबाई के सच की महत्ता का धीमा सा स्वीकार।

"सातारा तालुके में वाई गांव है ना, उसमें नौ दिवस तक उस छोकरी ने हाउस फुल लिया था। अभी आठ रोज पहले की खबर है। नौ दिन तक हाउस फुल लेना ठट्ठा नहीं है।" चिमन ने दोबारा तर्क किया।

अण्णाजी निरुत्तर हो गया। ठीक ही तो कह रहा है चिमन। नौ दिन तक सच का हाउस फुल ले जाना सचमुच ठट्ठा नहीं है।" नौ-दस दिन का रिकार्ड कावेरीबाई उस समय करती थी, जब उसकी उम्र दही की तरह कसी हुई थी। अब वह वक्त नहीं है। बुढ़ापे की झुर्रियां क्रमशः कमर, तरेट, बाहों की टोहनियों और गले के करीब तक आने लगी हैं। मेकअप से बहुत दिनों तक नहीं छुपाया जा सकता है उन्हें। अण्णाजी के माथे पर सिकुड़नें बन आईं। उसने जेब से एक बीड़ी निकाली। अभी सुलगाने ही वाला था कि चिमन ने रोक दिया, "इसे रहने दो। मेरे पास माल-पानी है।"

"माल-पानी ?" उत्साहित होकर अण्णाजी ने पूछा, "किधर से मारा ?"

"बस, मार दिया है।" चिमन बोला, "पटेल आया है बगल के गांव का। क्या नाम है उसका···अपना सखा है, बहुत पुराना।"

"कौन ? वेलापूरकर ?"

"हां, वही !···माल-पानी साथ रखता है हरदम। तुम्हारे को तो मालूम है ही।" चिमन ने जेब से पुड़िया निकाली, फिर बंडल। दो बीड़ियों के मुंह तोड़े। उनकी तम्बाकू एक ओर फाड़कर इकट्ठी कर ली। फिर पुड़िया में रखा गांजा तम्बाकू में मिला लिया।

"मुझे तो नहीं दिखा वेलापूरकर। किधर बैठा था ?" अण्णाजी पूछ रहा था।

"उधर, स्टेज के बायें बाजू में। बिलकुल कोने में। बड़ा रंगीला है स्साला। बुड्ढा हो गया है, पर जवानी वही बीस बरसवाली !" चिमन ने तम्बाकू और गांजे का मिला-जुला फेंट बीड़ियों के खाली खोलों में भर दिया।

अण्णाजी ने कुछ नहीं कहा। सोचता रहा, वेलापूरकर आया है तब तो मजा रहेगा। हरदम महुएवाली शराब लाता है···बड़ा आदमी है। पांच सौ बीघे जमीन का मालिक। ट्रैक्टर, ट्रक, जीप, सब उसके पास हैं। मकर देगा तो मस्त। मालूम नहीं, कावेरी को उसकी जानकारी है या नहीं।

"लो।" चिमन ने एक बीड़ी का मुंह बन्द किया। अण्णाजी की ओर बढ़ा दी, फिर अपनी बीड़ी का मुंह भरा। माचिस निकाली। सलाई जलाकर अण्णाजी के मुंह की ओर बढ़ाई।

एक लम्बी सुट्टी···! गांजे का कसैला धुआं तम्बू में भर गया। फिर धुआं और बढ़ा। चिमन ने अपनी बीड़ी भी सुलगा ली थी। रत्ना ने करवट बदली···देर से पलकें भ्रमक रखी थी, पर नींद नहीं आई। कैसे आ सकती है ? डर लगता है। दोनों अभी चले जाएंगे और तम्बू में अकेली रहना।···और अब तो जी भी घुटने लगा था। गांजे का तीखा, चुभनेवाला धुंआ भर गया है तम्बू में।

अण्णाजी खांसने लगा। उसने सीना भी ठोंका, पर धुआं भीतर कलेजे में गड़ गया है। जब खांसी थमी तब माथे पर पसीने की बूंदें उभर

आई थी। सारे पंजर-पंजर ढीले-से हो गए महसूस होने लगे थे।

"बेलापूरकर बोल गया है। रात को ही कावेरीबाई को बधाई देगा।"

अण्णाजी ने कुछ नहीं कहा। जानता है वह। पहले से ही जानता है। बेलापूरकर रात-भर बधाई देता रहेगा। यह उसकी आदत है। जब-जब कावेरीबाई का शो आया है, उसने इसी तरह शाबाशी दी है। जब तक पार्टी रहती है, रोज बधाई देता रहता है। रोज बधाई के साथ महंगी अंग्रेजी शराब···आदमी बहुत-से देखे हैं अण्णाजी ने, पर ऐसा रईस-दिमाग आदमी नहीं देखा।

इस बार चिमन ने खांसना शुरू किया। नाक होंठों तक बह आई। आंखों से आंसू निकल पड़े। उसने दोनों को ही एक बार में कुरते से पोंछ लिया। हांफ आया है।

अण्णाजी की आंखें सुर्ख होने लगी हैं।

चिमन के फेफड़े थोड़ी देर धौंकनी की तरह चलते रहे। थमे तो बोला, "सुनते हैं, गुलाबबाई की छोकरी का बड़ा जलवा है।"

"तुझे कैसे मालूम हुआ?"

"सुना है। पूरे मुनताई ने मुझे बताया है। सब तरफ उसका हल्ला है। बेलापूरकर ने भी बताया है।"

"बेलापूरकर ने?" अण्णाजी के नशे को एक झटका लगा। चैतन्यता का झटका। बोला, "ऐसा कैसे हो सकता है? बेलापूरकर अपने अलावा किसी दूसरी पार्टी का तमाशा देखता ही नहीं है।"

चिमनराव हंसा—खूब जोर से। इतने जोर से कि रत्ना ने पलकें खोल दीं और हैरानी से उसकी ओर देखने लगी। कैसे हंसता है?··· पागल हो गया है क्या!

"क्या, हंसता क्यों है?" अण्णाजी ने कठोर स्वर में पूछा।

"हंसता हूं, तुम्हारे पगलपन पर!···"

"क्यों?"

"क्यों क्या? बेलापूरकर हमारा गुलाम है या हम उसके गुलाम हैं?"

अण्णाजी चुप रहा—समझने की कोशिश करता हुआ। बीच-बीच में तरंगें उठती हैं और पहली वाली सीधी तरंगों को आड़ेपन से काट जाती हैं। सीधी खत्म होने लगी थी और उसके खत्म होने के साथ-साथ अण्णाजी का चेतन-तत्त्व भी खत्म हो रहा था।

चिमन ने कहा, "अण्णा, बेनापूरकर रईस आदमी है। उसकी अण्टी में पैसा है। बाज़ार में घूमता है। जो दुकान अच्छी लगेगी, उधर जाएगा। कोई उसका पैर बाँध नहीं सकता है।"

अण्णाजी चुप है। तरंगें उठ-गिर रही हैं। तरंगों के साथ ही अण्णाजी भी उठ-गिर रहा है।

रत्ना की नींद बिलकुल गायब हो चुकी थी। आँख मलकर उठ बैठी। अण्णाजी ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। सोच रहा था, गुलाबबाई की पार्टी ज़ोर पकड़ रही है। उसके पास एक नई छोकरी है और कावेरी की पार्टी में सिर्फ़ कावेरी··· कैसे क्या होगा? एक बार साख गई तो गई! आज ही कावेरी से बात करनी पड़ेगी।

"सो जा, रत्ना! ···" चिमन बोला।

रत्ना अनमने भाव से लेट गई, पर नींद गायब है।

थोड़ी देर अण्णाजी और चिमन चुपचाप बैठे रहे। फिर चिमन उठ खड़ा हुआ, उसके पीछे अण्णा भी। रत्ना का जी हुआ था, उन्हें रोके, पर क्या वह रुकते थे? होता यह कि अण्णाजी भड़क उठता। ज़ोर से डाँट देता और सहमकर रत्ना लेटी रह जाती। अक्सर ऐसा होता था। रत्ना जिस दिन देर तक जागती थी, उस दिन उसे डाँटकर सुलाया जाता था··· कोई किसी बार उसने समझ लिया था, कि उसे अकेले ही सोने की आदत डालनी पड़ी।

ढल रही है रात, पर अभी ठीक तरह पड़ नहीं रही है। हर पल बाहर का अहसास और इस अहसास के सिलसिले में मन का अहसास। अन्धेरा बाकी वक्त में उसे भूत-प्रेतों की कहानियाँ सुनाया करती है और हर तम्बू के कहानियाँ हर दिशा से लगातार ऐसी उठने लगती हैं।

तम्बू की ठंडी। एक सिहरन···

रत्ना उठ बैठी। तम्बू के बाहर के अन्धेरे में कोई है···आकार बनता

है। शायद वह, जिसके बारे में माला ने सुनाया था कि एक दैत्य था। सिर पर सींग, दांत बड़े-बड़े—हाथी के बराबर···वह राजकुमारी को लेकर भाग गया था और पानी के नीचे अपने घर में जा छुपा था! ···

वही दैत्य!···और रत्ना अकेली। बिल्कुल राजकुमारी-सी। वह ऐसे ही एक दिन अकेली पड़ी हुई थी।···रत्ना भी पड़ी है। वह घबराकर बाहर निकल आई। सांस जोरों से चलने लगी है। तम्बू के बाहर अंधेरा है, पर इस अंधेरे में इक्का-दुक्का लोग दीखते हैं। रत्ना का भय घटा। कावेरीबाई के गीत का स्वर अब भी आ रहा है···न जाने कब तक गाएगी कम्बख्त!···रत्ना ने सोचा—माला को बुला ले। साथ रहेगी, फिर डर नहीं लगेगा। स्टेज तक पहुंची। पिछवाड़े से समाई। देखा कि जहां माला को छोड़ा था, वहां वह नहीं है। कहां गई?···जगह बदल दी उसने। अब?

इधर-उधर ढूंढ़ती नजरें फिराती रही। जब माला नहीं दिखी तो मन मारकर लौट पड़ी। नींद है, पर पलकों से नीचे उतरने को तैयार नहीं है। क्या करे रत्ना?

कावेरी के तम्बू में सो जाए। वहां मौसी होगी। श्यामाबाई वहीं चली आई। श्यामाबाई जाग रही थी। आहट पर चौंकी। पूछा, "कौन है?"

"रत्ना।"

"तू सोई नहीं अब तक?" उसने पूछा।

"डर लगता है।" रत्ना ने जवाब दिया और उसके करीब जा बैठी—बिलकुल उसीसे सटकर। अब पूरी तरह निश्चिंत हो चुकी है।

श्यामाबाई कुछ नहीं बोली।

रत्ना ने कहा, 'मैं यहीं सो जाऊं?"

"हूं!" श्यामाबाई बोली। इस तरह जैसे रत्ना ने कोई अस्वाभाविक बात की है—अजीब। बोली, "तू अपनी जगह क्यों नहीं सोती?"

"उधर सूना है।"

श्यामाबाई चुप हो गई।

"सो जाऊं?" रत्ना ने फिर पूछा। मन में सन्देह है। कहीं डांट न दे वह।

"नहीं।" श्यामाबाई ने कहा, "अभी खेल खतम होनेवाला है। माला आ जाएगी, फिर तू उसके साथ तम्बू में चली जाना। उधर ही सोना है। इधर जगह ही कहां है ?"

रत्ना उदास हो गई। नींद पलकों से नीचे उतरने लगी थी। श्यामाबाई की उपस्थिति ने भय भगा दिया है। रत्ना ने सोचा, सो ही जाए। श्यामाबाई अन्धी है। क्या दिखेगा उसे ? कुछ सरककर कावेरीबाई के पलंग के नीचे समा गई—धरती पर।

आहट से श्यामा चौंकी, "क्या कर रही है ?"

"अपनी जगह जा रही हूं।" रत्ना ने झूठ बोल दिया।

श्यामा चुप हो गई।

रत्ना ने पलकें मूंद लीं। निश्चिन्त है। जब तक कावेरीबाई नहीं आ जाएगी, तब तक श्यामा यहां से जा नहीं सकती। कावेरी के तम्बू की रखवाली में बैठी रहती है। उसके आने के बाद जाएगी, फिर कावेरी होगी···कैसा डर! नींद आ गई थी उसे। बिलकुल आंखों की कोरों पर बैठी थी··· गड़ाप् से रत्ना की सुध-बुध को निगल गई।

तम्बू में खड़खड़ाहटें हुईं, फिर आवाजें। रत्ना जाग गई। उनींदी उठने का जी नहीं हुआ, हालांकि धरती नीचे से गड़ रही थी।···देर बा यह खयाल आया कि वह कावेरी के तम्बू में आ सोई है। जी हुआ था कि उठे और अपने तम्बू में चली जाए, हर आलम इस तरह बदन में लिपट हुआ था, जैसे कागज पर चिपक गई है। पड़ी ही रही।

श्यामाबाई चली गई। कावेरी ने एक गहरी सांस ली। लेट गई चार-पांच घंटे स्टेज पर बीतते हैं। कभी खड़े हुए, कभी नाचते हुए। ह जोड़ में दर्द हो आता है। फिर वह उम्र भी नहीं है। एक वक्त था कि ऐसे दर्द उससे दूर खड़े रहते थे—डरे हुए! और अब उनसे कावेरी डरने लग है। हर पल लगता है कि पांव मोच न जाए। झोंक सेते वक्त कहीं न चा जाए या तरेट को भुरी किसी दर्शक की आंख में न चुभ जाए···

वह उठी। मेकअप पहले ही धो चुकी थी। चेहरे पर वैसलीन मली

ार रंग पोते रहने के कारण चमड़ी खिंचने लगी है। सारे चेहरे
नों में एक तनाव पैदा हो जाता है। कभी-कभी अण्णाजी लाया था।
हा था, 'बेलापूरकर लाया है।'

'हां, मुझे मालूम है।' कावेरी बोली थी। बड़ा संक्षिप्त-सा उत्तर।
नहीं होता है कि अण्णाजी से इतनी संक्षिप्त बात की जाए, स्वर में
रन रहे, पर थकान इतनी बढ़ चुकी होती है कि नीचे मुंह बात नहीं
। बात करने लायक हालत तब होती है जब दो-चार घूंट ले ले···
उसने ऐसा ही किया। अक्सर करती है। उन दिनों में नाम तौर से,
दिनों तमाशा चलता है। बिरज को हुक्म दे रखा है कि प्रोग्राम
होते ही कुछ नमकीन ले आया करे—चिवड़ा, दालसेव, चिप्स···
ी।

बोतल हाथ में ले ली थी। अण्णाजी ने फरमाबरदार नौकर की तरह
ौर फिर बोतल को देखा। थूक का एक घूंट निगला और खड़ा रहा।
ो समझ गई। यह भी जानती है कि उसे क्या कहना या करना है।
दो गिलास रख लिए बक्स पर। यह बक्स टेबल की तरह चारपाई
नारे रखा हुआ था। अण्णाजी के चेहरे पर एक कौंध पैदा हो आई
ज़िन्दगी की कौंध! ···पर जाने क्या हुआ, वह बाहर चला गया।
कावेरी ने उसे रोकना चाहा था, पर नहीं रोका। असल में थकान
रए शब्द खर्च करना भी अखरता है।

थोड़ी देर बाद लौटेगा—देख गया है कि गिलास दो हैं, लौटेगा
! कावेरी ने बोतल बक्स पर रख दी थी। अंग्रेज़ी है। ऊंची।
दाम खर्च होते हैं। पूरे सच में उसके सिवा और कोई नहीं पीता है।
ब हैं, पर यह जो कावेरी पीती है, उसे पीने की उनकी औकात
। कैसे हो सकती है?

कावेरी फिर लेट गई। पलकें बन्द कर लीं। अण्णाजी बिरज को
गया होगा, और बिरज नमकीन की तलाश में···

चारपाई के नीचे पड़ी रत्ना को फिर से नींद की झपकी ने कस
है!···

अण्णाजी लौटा। बेलापुरकर साथ में है। देखा कि कावेरी आंखें

मूंदे चित पड़ी है। लांगवाली धोती में कसी जांघें चारपाई पर छितराई हुईं, सीना उभरा हुआ, चेहरे पर खुमारी·· बेलापूरकर का जी हुआ कि उछलकर उसके ऊपर जा गिरे। लिपट जाए उससे। उसने थूक निगला। कहा, "कैसी हो, कावेरीबाई ?" फिर चारपाई के करीब आ खड़ा हुआ।

कावेरी ने पलकें खोल लीं। उसी तरह पड़ी रही। मुसकराई, "ठीक हूं, शंकरराव !·· तुम कैसे हो ?"

"मैं भी ठीक हूं!" शंकरराव बेलापूरकर बोला। अधेड़ उम्र पार कर रहा है, पर मांस इस तरह गठा हुआ है जैसे मिलिटरी का सिपाही हो। होंठों पर दोनों ओर बिच्छू के डंकों की तरह ऐंठी हुई ऊंची मूंछें। कावेरी को ये मूंछें अच्छी नहीं लगतीं। गाल के करीब न हों तो भी लगता है कि चुभ रही हैं। वह बक्स पर पड़ी बोतल उठाकर देखने लगा है, "कौनसी है !···थ्री एक्स·· "

"हां, ले लो !"

"नहीं !" शंकरराव ने कहा, "बिरजू को भेजा है। दरोगा के यहां से अच्छी वाली लाएगा। इससे ऊंची। आज मेरी तरफ से वह लेना। याद करोगी !···"

"याद तो तुम्हें हमेशा ही करते हैं, शंकरराव !" अण्णाजी ने एक हुजूरे की तरह विनम्रता से कहा।

कावेरी चुप रही। इस तरह जैसे शंकरराव मौजूद है और कुछ बोल रहा है, यह उसे मालूम ही नहीं है।

शंकरराव ने बोतल अण्णाजी के हाथ में थमा दी, कहा, "आज इसे तुम खाली करो, अण्णा !···"

अण्णाजी ने भोंडे ढंग से मुसकराकर बोतल ले ली। बाहर जाते हुए कहा, "मैं बिरजू को देखता हूं।"

अण्णाजी के जाते ही शंकरराव ने बक्स पर रखे गिलास सरकाकर किनारे किए और बैठ गया। कावेरी ने पलकें फिर से खोल ली थीं, और उसकी ओर मुसकराने की कोशिश कर रही थी···कितनी तकलीफदेह कोशिश···अब तो बिलकुल ही टूट गई है। उसने सोचा।

शंकरराव ने उसकी जांघों पर नजरें फिरानी शुरू कीं। इस तरह जैसे

हौले-हौले उन्हें सहला रहा है। जी हुआ कि तुरन्त कावेरी को बाहों में भर ले···अब भी कम आकर्षण नहीं है उसमें। बिलकुल वैसी ही लग रही है, जैसी पहली-पहली बार देखी थी। पन्द्रह-सोलह साल हो गए हैं··· शंकरराव ने जबड़े कस लिए। ऊपर दाईं ओर की दाढ़ कसकी। उसमें कीड़ा है और दबाने से कई बार कसकने लगता है। एक वक्त था कि दाढ़ के बीच पत्थर का टुकड़ा भी रख लेता था तो कतरे हो जाते थे उसके, पर··· उसने जबड़े ढीले छोड़ दिए। अचानक वह एक बीमार आदमी की तरह निरीह हो गया।

कावेरी मुसकराई। मुसकराना जरूरी था। शंकरराव सिर्फ उसका पुराना गाहक ही नहीं है, पटेल भी है—राजनीतिक नेता भी। दरोगा, तहसीलदार, पटवारी···सब उससे दबते हैं। वह हमेशा चुना जाता है। उसके इशारे पर पूरे तालुके में संघ के लिए जगह मिलती है और उसके इशारे में छीनी जा सकती है।

शंकरराव ने कहा, "बिरज नहीं आया अब तक ?···न जाने स्साला किधर मर गया!···दरोगा भी यहां का साला ऐसा ही है। खुद भिजवा सकता था। खरीदकर तो पहले ही रख छोड़ी थी।"

कावेरी ने कहा, "आता ही होगा।···" फिर बात बदली, "ठीक से बैठो ना। इधर···" वह चारपाई पर एक किनारे हो गई। हथेली सीने के पासवाली जगह पर थपथपाई, "यहां।···आ जाओ!"

"हां-हां, वह तो ठीक है!···" शंकरराव ने बेचैनी से तम्बू के मुंह की ओर देखा, जिसपर परदा पड़ा हुआ था, "कितनी देर कर दी स्साले ने!"

कावेरी चुप हो गई। इतना ही कहना चाहिए। ज्यादा मनाने से ज्यादा सिर चढ़ते हैं ऐसे लोग। वह खूब जानती है कि कब कितने तोले का शब्द फेंकना चाहिए।

परदा कोने से उठा। बिरज प्रकट हुआ। हाथ में बोतल। नमकीन का एक पुड़ा।

"अच्छे, कहां रह गया था ?" शंकरराव अकुलाया।

"आने में देर हो गई।" बिरज ने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया।

"अच्छा-अच्छा।"

बिरज जाने लगा।

"और सोडा…"

बिरज थमा। कावेरी ने कहा, "सोडा है। तू जा!"

बिरज चला गया। कावेरी ने उठकर सोडा निकाला और शंकरराव के हाथ में थमा दिया। शंकरराव ने ढक्कन खोला। दोनों गिलासों में शराब डाली, फिर सोडा उडेला। जब दूसरे गिलास में उंडेलने लगा तो कावेरी ने कहा, "न-न, मुझे नहीं चाहिए!"

शंकरराव ने हैरानी से उसे देखा। कुछ अविश्वास भी था। पूछा, "खाली?…नीट!…"

"हां।" कावेरी ने गिलास टकरा दिया और एक ही बार में पूरा पैग उंडेल लिया।

"कमाल!…" शंकरराव ने आश्चर्य से कहा।

"पियो। पियो!…"

"पर तुम तो कमाल ही करने लगी हो, कावेरी!" उसने अपना गिलास वैसे ही पकड़ रखा था।

कावेरी हंसी, "कमाल मेरा नहीं तुम्हारा है शंकरराव, कि तुम अब भी जवान हो। ऐसे घूरते हो, जैसे खा जाओगे!"

शंकरराव ने गिलास होंठों से लगाया। दो घूंट लिए और उठकर कावेरी के सीने के पास आ बैठा—चारपाई पर। बोला, "यह तो तुम्हारा कमाल है, कावेरी!…अब भी देखनेवाले को जवान बना देती हो! यह जलवा कि साठ साल का आदमी देखे तो लकीर खड़ी हो जाए!" वह हंसा। दो घूट और।

कावेरी लेटे ही लेटे भमरीन सा रही थी। थकान गायब। पूरा पंग—बंगाल का जादू!…जड़ पर पड़े तो चेतन हो जाए। कावेरी तो सिर्फ थकी हुई थी।

शंकरराव ने उसका खाली गिलास फिर से भर दिया—अपना भी। दो चिप्स गले में डाली और जुगाली करने लगा। कीड़े पर बेहोशी आ गई है…अखड़ा खूब बसा जा सकता है। पत्थर तोड़ने की हद तक।

बोला, "खूब !···खूब फोर्स है तुम्हारे नाचने में। बिलकुल वही फोर्स
वही तेज़ी। मान गया तुम्हें। अभी कुछ दिन हुए, गुलाबबाई का
देखा। स्साली न जाने कहां से एक बिजली ले आई है। फ़र्श से
पर छोड़ती है और बिजली गिरने लगती है। चीज़ !···सोलह कलाएं
उसमें। दारू है बिलकुल !···

कावेरी गम्भीर हो गई। उसे भी खबर मिल चुकी है। गुलाब
का डूबा सितारा उसी फुलझड़ी के बल पर फिर से जगमगाने लगा है·
जबकि कावेरी पर टिप्पणियां होने लगी हैं, "बूढ़ी हो गई है !"

पर चुप रही कावेरीबाई। समझ गई कि बेलापूरकर पर गुलाब
दांव लगा दिया है। और बेलापूरकर पर दांव का मतलब है, पूरे तालुके
(परगना) का हाथ से निकल जाना। आसपास के दस-पांच गांव भी
बेतूल तक !

शंकरराव ने गिलास खाली कर दिया था। वह झूमने लगा है। झूम
के साथ-साथ बदन में हिलोरें भी तैरने लगी हैं। वह नीचे झुका···और
नीचे। कावेरी उसी तरह पड़ी रही। आंखें उसने भी झपकनी शुरू कर दी
हैं। भीतर बदन में खून नाचने लगा है। रफ्तार में तेज़ी। लावणी-सा
उतार-चढ़ाव···

गिलास ऊपर से गिरा, पर टूटा नहीं। नीचे की धरती सख्त नहीं
थी। भुरभुरी धूल। चारपाई के नीचे पड़ी रत्ना चौंकी। लगा कि दैत्य
पानी चीरता हुआ नीचे समा रहा है। पाताल में। राजकुमारी कैद में है।
उसकी बांहों में कसी हुई। डर गई वह। आलस उड़ा तो डर निकल गया।
वह तो अपनी मां के तम्बू में है।···पर

ऊपर बिलकुल सिर पर खलबली-सी हो रही थी। रत्ना की नींद
पूरी तरह उचट गई। शंकरराव हांफ रहा था। बिलकुल रेडियो के
डिस्टर्बेंस की आवाज़।

रत्ना परेशान हो उठी। परेशानी के साथ-साथ भय। उसे याद है कि
चिमनराव के पास एक बूढ़ा कुत्ता था। बहुत ज़ोर-ज़ोर से हांफता था। पर

वह कुत्ता तो मर गया था ! ··सब रोए थे। रत्ना को खूब याद है··· मगरयह कुत्ते-जैसी हाफ ! ···भूत ! ···रत्ना के जिस्म में थरथराहट हुई।

लावणी की कड़ियां धरती पर मा रही। गुंथी हुई कड़िया। रत्ना कांप उठी। चीखते-चीखते रह गई। उसने देखा कि कावेरीबाई और शंकरराव एक-दूसरे से गुंथे हुए थे। कितने घिनौने ! रत्ना को क्रोध आया। और उस आदमी की ओर तो देखा नहीं जाता। देखे बिना रहा भी नहीं जाता। क्यो—यह पता नही।

और वे इतने तन्मय···इतने नशे मे कि रत्ना उपस्थित होकर भी उनके लिए अनुपस्थित ! और रत्ना इतनी चकित, इतनी नासमझ कि वहीं पड़ी रही।

और तभी कावेरी ने उसे देख लिया, "तू ? ···इधर ! ···तू यहां क्या कर रही है बेड़ी ! " वह उठी, लड़खड़ाई। एक चादरा खींचकर लपेट लिया। बिलकुल अण्णाजी की तरह। वह नहाने के बाद इसी तरह तौलिया लपेटता है।

"बाहर जा ! ···कावेरी चिल्लाई। रत्ना तेजी से परदा उछालकर भाग पड़ी·· हाफती हुई। बदहवास।

बाहर अंधेरा था। गैस-बत्तियां बुझाई जा चुकी हैं। वे सिर्फ स्टेज के लिए होती हैं। तम्बुओं के लिए सादीवाली लालटेनें। बूढ़ी रोशनी उडेलनेवाली।

माला के तम्बू का मुंह खुला हुआ है। बाहर चौकड़ी जमी है। चौकड़ी ही है—चिमनराव कामेडियन, बिरज, अण्णाजी और एक सिपाही। बीच में बोतल।

दारूबाज ! ···वे बहक रहे थे। चिमनराव गीत गा रहा था। मराठी की लावणी। भोंडी आवाज और लावणी के प्यारे बोल। कैसा विरोधाभास ! रत्ना का जी हुआ कि उसका मुंह नोच ले। गन्दा। अच्छे-भले गीत का नाश किए दे रहा है।

रत्ना जब उनके करीब पहुंची और भीतर तम्बू में समाने लगी तो चिमन ने टोका। शब्द दायें-बायें भागते हुए, "ऐ रत्ना ! ···रत्ना···!"

वह रुक गई।

"हूं।"

"अच्छा।" माला ने उसकी कमर के गिर्द बांह डाल दी और अपने से सटा लिया ज़ोर से। बुदबुदाई, "सो जा!"

रत्ना को अच्छा नहीं लगा। इस तरह सटकर सोने से दम फूलने लगता है। कुछ छटपटाहट करती हुई छूटकर अलग सरक गई।

माला फिर गहरी नींद में···

क्यों पी लेते हैं इतनी ?···पीकर होश नहीं रहता। नंगे होकर पागल हो जाते हैं। कितनी बुरी चीज है शराब!···बाहर से अण्णाजी, बिरज और चिमनराव की हंसी और बेसिर-पैर की बड़बड़ाहट आ रही थी।

रत्ना ने सोने के लिए फिर पलकें मूंद दीं। सब कुछ इस तरह तुरंत भुला दिया था जैसे कुछ भी अस्वाभाविक नहीं घटा था। लगा था कि जो कुछ देखा है, वह दारू का एक अंश है, दारूबाजों का एक रूप—शेष कुछ नहीं।···

नींद पलकों से क्रमशः उतरने लगी थी और सब देखा हुआ अंधेरे में डूबने लगा था···डूब गया था!

वक्त के अंधेरे में सब कुछ डूबा जा रहा था!

अर्थहीन! सब रत्ना के बचपन को छलता हुआ। जो हुआ वह सब रत्ना ने शराबियों से सम्बद्ध कर बिसरा दिया। उसे अण्णाजी का महत्त्व एक पिता की ही तरह लगता रहा था। किसी बार उसने नहीं समझा था कि कई बार आदमी बाप होकर भी बाप नहीं होता, सिर्फ एक रिवाज होता है और रिवाज की ही तरह उसे निबाहा जाता है। चूंकि हर नाम के साथ अक्सर पिता का नाम बताना या लिखना ज़रूरी होता है, इसलिए अण्णाजी पिता था।···पिता नहीं, सिर्फ पिता का तर्क!

माला की तरह उसने कभी सोचने की ज़रूरत नहीं समझी कि कावेरी भी एक तरह से मां नहीं, सिर्फ मां का तर्क ओढ़े हुए है। मूलतः यह सच है—सिर्फ अभिनय! स्टेज पर गढ़ा गया कोई चुटकुला एक मेकअप, जो

चार घण्टे के शो के बाद शेष जिन्दगी पर पुता रहता है।

पर कुछ ऐसी जगहें भी थीं, जहां चाहकर भी रत्ना उस तरह विश्वास नहीं कर पाती थी जिस तरह उसने पप्पा के पिता होने पर किया था। उदाहरण के लिए यह कि दुनिया मंच है और जो कुछ दुनिया की तरह देखा जाता है, वह भी सच है। औरत, मर्द, बच्चे सब उस बड़े मंच के अभिनेता हैं और कोई घरू जिन्दगी में और कोई बाहरी जिन्दगी में नाटक करते हैं।

यह भी कि दुनिया में मंच के अतिरिक्त कुछ भी सच नहीं है। माला ने यही बताया था, हालांकि उस समय तक···और बाद में भी···रत्ना इस विचार से कभी सहमत नहीं हो सकी थी, पर सच यही बताया गया था। सबका सच। सब जिसे मानते थे, जानते थे और रत्ना को जनवाना चाहते थे। तब, जब रत्ना इस ढंग तक पहुंचने लगी थी कि वह भी बहुत कुछ जानती है और सच देखने के लिए उसे किसीके तर्क का चश्मा नहीं चाहिए···पर वे थे कि रत्ना को उसी तरह अबोध जानकर समझाए जाते थे। प्रमाण भी देने लगते थे। कभी-कभी उदाहरण।

एक उदाहरण पेश किया था स्वयं कावेरी ने—तब, जब रत्ना उस घटना को दारूबाजी समझी थी। स्टेज पर अभिनय के बाद एक और अभिनय। अपने-आपसे अभिनय। दूसरे दिन उसने सहज जिज्ञासावश रात की घटना माला को सुनाई थी। बताया था कि 'आई' कितना पी लेती है···'आई' यानी कावेरीबाई!···

माला गम्भीर हो गई थी···और और गम्भीर होती गई थी। हर बार, हर कड़ी के साथ पूछती, "फिर?···"

"फिर क्या, मैं भागनेवाली थी कि उसने देख लिया।" रत्ना बोली।

"किसने?" माला का सवाल।

"आई ने और किसने?"

"फिर···?"

"फिर उसने गुस्से में कहा, 'तू इधर कैसे आई? निकल, यहां से?' मैं उठकर भागी। कहीं मार न बैठे आई···"

"फिर?···"

"बस, मैं भाग आई।"

"और वह कुछ नहीं बोला।" माला ने पूछा।

"वह क्या बोलता। वह तो बेहोश हो गया था दारू से। वैसा ही पड़ा था—नंग-धड़ंग!...पागल! गन्दा!" रत्ना ने कहा था, "अन्त में बोली थी, 'अक्का, इतनी दारू क्यों पी लेती है भाई? दारू से दिल जल जाता है ना?...जहर होता है? ऐं?'"

माला ने जवाब नहीं दिया था। चुप थी। इस तरह, जैसे बहुत बड़ी बात हो गई हो। रत्ना को उसकी मुद्रा अस्वाभाविक-सी लगी। लगा था कि ऐसी गम्भीर बात तो रत्ना ने बताई नहीं है। सिर्फ दारूबाजों का एक किस्सा सुनाया है। दुख यही है कि वह बहुत पीने लगी है—पागलपन की हद तक। उसने चुप माला को फिर से कुरेदा था, "क्यों अक्का, दारू पीना खराब बात है?"

"ऐं?" कहीं दूर से लौटी हो माला—इस तरह चौंककर बोली, "खराब क्या है। सब ठीक है। पर सिर्फ उनके लिए ठीक है जो दारू पीते हैं। जो नहीं पीते, उनके लिए अच्छा-बुरा कुछ भी नहीं होता।"

रत्ना नहीं समझी थी माला का उत्तर। अक्सर माला के उत्तर नहीं समझ पाती थी। वह एक ही बार में हर चीज के प्रति पसन्द और नापसन्द प्रकट कर देती थी। क्या सही होता है, क्या गलत? माला के जवाबों से समझना कठिन था।...

फिर एक दिन अचानक वे सारे संवाद समझ में आने लगे थे, जो किसी वक्त में अर्थहीन और गूढ़ लगते थे। कभी लगता था कि माला दोरंगी बात करती है और कभी लगता था कि माला का सिर फिरा हुआ है...

पर बाद में—बहुत बाद में पहचाना था रत्ना ने कि माला का हर संवाद बला का अर्थयुक्त होता था। वह स्वयं भी अर्थयुक्त थी। यह दूसरी बात थी कि रत्ना उसे कभी समझ नहीं सकी। जब समझा, तब इतना ज्यादा समझ लिया कि उससे घृणा होने लगी...क्रोध आने लगा था उस-पर। यहां तक कि कभी-कभी रत्ना उसपर भड़क भी पड़ती थी। ऐसी हर भड़क के उत्तर में माला सिर झुका लेती, चुप रह जाती या रत्ना को

वह सवाल कर भी दिया था।

फिर सवाल का हल निकाला गया—माला!···श्याम, जिसका कुछ हिस्सा पीलापन लेने लगा था। पार्टी कुछ दिन के लिए प्रोग्राम करना छोड़कर गांव में आ ठहरी थी। माला की ट्रेनिंग होती है। कावेरी, उस्तादजी और वादक तीन तरफ से उसे घेर लेते। एक ओर बैठ जाती रत्ना—उसके बाद अण्णाजी, चिमन···और बाकी लोग!

ता···धिन्···धिन्···तक्धिन् तध्न···ता!···

माला चक्करमाई खाने लगती···

"ऐसे नहीं!···ऐसे!" कावेरी थाप बताती, शरीर का मोड़। रत्ना देखती रहती। समझ चुकी थी कि अब माला उतरेगी मंच पर।

माला निर्देशों के अनुसार शरीर मोड़ती-तोड़ती। कावेरी कहती, "शाबाश!···"

और शाबाशियों का सिलसिला!···

और शाबाशियों के बीच कावेरी की गर्वोक्ति "देखूंगी, गुलाब की फुलझड़ी को!···"

बला की फुर्ती थी माला में। बिलकुल कावेरी का अवतार! जैसे वही उम्र, वही जवानी, दूसरा नाम धरकर मंच पर उतरनेवाली है। अण्णाजी, चिमन, बिरज सबके सूखे चेहरों पर मुसकराहटों की नई कोंपलें निकलने लगी थीं। रत्ना भी खुश होती। तमाशा शुरू होगा। वह धूमधाम, जो कुछ समय पहले थम गई थी, फिर से देखने को मिलेगी···महकी-महकी फिरती रत्ना। कभी-कभी माला से पूछती भी, "क्यों अबका, अब तू नाचेगी?···सच में तुझे देखने हज़ारों-हज़ार लोग आया करेंगे, क्यों?"

"हां।" माला एक गहरी सांस लेती। कई घण्टों की रिहर्सल के बाद थक चुकी होती थी। कहती, "मालूम नहीं, मुझे देखने आएंगे या मैं उन्हें देखूंगी!"

गहाप्! रत्ना का दिमाग डुबकी ले जाता। कुछ न ···। सिर्फ कभी-कभी लगता था कि माला खुश नहीं है। क्यों ··· समझ से बाहर की बात थी।

माला सचमुच बहुत अप्रसन्न थी। यह उस दिन मालूम हुआ था रत्ना को, जब कावेरी ने उसे पीटा था। सब ठिठके खड़े देखते रहे थे और कावेरी उसे छड़ियों से पीटती गई थी···सड़ाक्! सड़ाक्!···

"···बोल! अब कहेगी, हमारे को रंडीपन! ···बोल, ऐसी बात! कहेगी?"

"नहीं!···" वह जमीन पर गिर पड़ी थी। सांवला रंग नहीं था उसका, पर सांवला होने लगा था। एक ओर सहमी खड़ी थी रत्ना। जी हो रहा था कि माला को बचा ले। आगे बढ़े और कावेरी के हाथों से वह छड़ी छीनकर दूर फेंक दे। उसे धक्का दे और सवाल करे कि क्यों पीट रही है?···पर क्या ऐसा कर सकती थी रत्ना?···कोई भी ऐसा कर सकता था?···शायद कोई नहीं कर सकता था। सभी तो खड़े थे। पर इस तरह जैसे कोई नहीं है। हां, कावेरी के सामने सब ऐसे ही थे। हमेशा ऐसे ही रहते थे। होकर भी नहीं के बराबर।···उस दिन भी नहीं थे वे।

कावेरी का क्रोध नहीं थमा था। वैसी विकराल औरत पहले कभी नहीं देखी थी रत्ना ने।···वह बराबर छड़ी बरसाए गई थी। बरस के साथ कड़कता हुआ सवाल, "बोल!···ऐसे कहेगी? अपने काम के लिए ऐसी बात कहेगी?"

क्या कहा था माला ने? रत्ना को उस समय मालूम हुआ था, जब वह कराहती हुई रात-भर जागती रही थी—रत्ना के करीब लेटकर। माला के शरीर पर छड़ी ने कई-कई जगह लकीरें बना दी थीं और उन लकीरों पर खून छलछला आया था। लकीरें कसकने लगी थीं। रात को कसक बहुत बढ़ गई थी।

"क्या बात हुई थी माला?" रत्ना ने सवाल किया था। उसे भी नींद नहीं आ रही थी। कैसे आती? रह-रहकर कावेरी का वह विद्रूप रूप आंखों के सामने उभर आता था···पिसते दांत, भिंचे शब्द, छड़ी बरसाता हाथ और खूंख्वार नजरें!···

"कुछ नहीं।" माला ने कहा था। करवट बदल ली थी। वह कटु क्षणों का स्मरण तक नहीं करना चाहती। लकीरें और कसक उठती हैं।

रत्ना थोड़ी देर चुप रही। कुछ तो है जिसके कारण···उसने पुनः

पूछा था, "फिर भी तो, प्रवका !… बता, मैं तेरी छोटी बहिन हूं ना !… क्या हुआ था ?"

माला ने उत्तर नहीं दिया। सिसकियां भर-भरकर रोने लगी।

रत्ना को उसकी सिसकियां सुनकर ऐसा लगने लगा था जैसे उसके अपने शरीर पर भी लकीरें हैं, जिनमें खून…निर्दयी कावेरी ! मां है या…रत्ना ने हौले से करवट दिलाई माला को। चेहरा सामने आ गया। सहानुभूति-भरे मृदु स्वर में वही सवाल, "क्या हुआ था प्रवका ?"

"मुझसे गलती हो गई थी, रत्ना।" माला गम्भीर आवाज में बोली थी, "मुझसे बहुत बड़ी गलती हो गई थी।"

"थाप गलत हुई थी, या बोल भूल गई ?" सहज भाव से रत्ना ने पूछा था।

"हां, थाप भी गलत हो गई थी और बोल भी भूल गई थी।" वह बोली, "सच की औरत को तमाशे में थाप ढूंढना चाहिए।" मैंने वह थाप गृहस्थी में ढूंढने की कोशिश की। सच की औरतें गंगाजल पीने के लिए नहीं होतीं। मैंने यह गलती भी की थी।"

और रत्ना फिर गड़ाप् !… कुछ नहीं समझी। बस, इतना समझ चुकी थी कि कोई बात जरूर थी, जिसके लिए कावेरी ने उसे पीटा था… पीटना जायज लगने लगा था। मां है। गलती होगी तो पीटेगी ही, पर नाजायज सिर्फ यह लगा था कि कावेरी ने उसे ज्यादा पीट दिया। कितना भयानक गुस्सा !

लेट गई थी वह। चुप। आंखें तम्बू के चौकोर आसमान पर लटकी हुईं। नींद गुम। उसे लगा था कि किसी दिन वह भी पिट सकती है, इसी तरह। वह भी तो कावेरी की बेटी है और कावेरी का क्रोध खराब !

माला भी चुप। बाहर बड़ी रात तक चिमन, अप्पा, बिरजू वगैरा टोली लगाए बैठे रहते। तमाशा तो होता नहीं था उन दिनों, पर वे जागते उतनी ही देर तक थे। आदत न बिगड़ जाए इसलिए। उन दिनों पीने के लिए शराब भी नहीं मिलती थी। कावेरी ने माला की तैयारी के दिनों को घाटे के दिन माना था। घाटे के दिनों में उसने अपना खर्च कम कर दिया था…और कावेरी के खर्चों की कमी सारी पार्टी के खर्चों की कमी थी।

कभी-कमार भण्णाजी या विमन यहां-वहां से उधार या दोस्ती में पाव-दो पाव मसाला ले ग्राते···फिर कई-कई पखवाड़ों तक छुट्टी।

रत्ना और माला देर तक उनकी भावाजें सुनती रही थीं। बीच-बीच में माला ने कई-कई बार करवटें बदलीं। कावेरी के दिए पाव कसकते थे···फिर अचानक उठी थी माला। उसने एक सिगरेट सुलगा ली थी और चुपचाप बैठकर पीने लगी थी···रत्ना ने देखा था, पर यह खास बात नहीं थी। माला बहुत दिनों से चोरी-छिपे पीती थी। काफी दिन हुए जब एक बार रत्ना ने उसे देख लिया था तो माला ने रिश्वत में उसे भी एक सिगरेट पिलाई थी···पहले खांसने लगी थी वह। आंखों में आंसू आ गए थे···फिर सहन हो गई थी उसे। अब कभी-कभी वह भी पी लिया करती है। आनन्द आता है। खास तौर से उस वक्त जब धुएं का छल्ला उड़ाया जाए!···

रत्ना ने सोने की कोशिश की थी···शायद सो भी जाती, पर थोड़ी देर बाद फुसफुसाहटों ने उसे जगा दिया था···

"ऐ·· माला! हिश्श···"

"कौन?···तू?" माला चौंक गई।

रत्ना भी चौंक गई थी। उनींदी पलकें उठाकर देखा था। कामगार लड़का है—नया लड़का। देसी आदमी—नाम जगन्नाथ। बेकार फिरता था। कावेरी ने सस्ते भाव में साथ रख लिया है···पर यहां इस तरह माला को क्यों जगा रहा है?

"तू यहां क्यों आया है? मुझे मरवाएगा क्या?" माला झल्ला रही थी।

रत्ना समझ गई कि कुछ है। पर क्या है, यह समझना हमेशा की तरह शेष। माला का एक बिलकुल नया तमाशा सामने था। अभी मुश्किल से एक महीना तो हुआ है, इस लड़के को संच में आए हुए, और माला से इतनी दोस्ती···

"मुझपर रहा नहीं गया माला। इसीलिए चला आया हूं। कितना मारा है तुझे?" लड़के की आवाज़ भर्राई हुई है।

रत्ना उसके प्रति श्रद्धा से भर उठी। कितना भला लड़का है। सारे

ंव में से किसीने माला की खोज-खबर नहीं ली है और यह है कि इतना खतरा उठाकर आधी रात को माला के लिए सहानुभूति जतलाने आया है। इतना अच्छा है जगन्नाथ। रत्ना को अब तक मालूम ही नहीं था। सच्चा दोस्त !

"पर तुझे किसीने···" माला डर गई थी। रत्ना की ओर देख चुकी है। आंखें मुंदी हैं उसकी। सो रही है, यह जानकर ही माला जगन्नाथ से बतियाने लगी है—बिलकुल सूई जैसी बारीक आवाज में। अगर ये दोनों रत्ना से दो हाथ दूर भी हो जाएं तो रत्ना उन दोनों के ही शब्द नहीं समझ सकेगी···बाहरवाले तो सुन ही क्या सकते हैं।

पर वे दो हाथ दूर जाते कहां? वहीं फुसफुसाने लगे थे। सारे सम्ब में सामान घटा हुआ है। एक बार पुनः सशंक माला ने रत्ना की ओर देखा था।

"मुझे किसीने नहीं देखा है।"

"पर तू यहां क्यों आया?"

"दिल नहीं माना, इसलिए !···तुझे बहुत चोट लगी है क्या? माला की आवाज भर्रा गई थी, "हां, बहुत।"

"तू रो रही है।"

"रोना ही तो है मेरी जिन्दगी में।"

वह चुप हो गया था।

थोड़ी देर माला भी चुप रही। वह बोला था, "रो मत। जल्दी सब ठीक हो जाएगा।"

"क्या ठीक होगा !" उसने निराशा से उत्तर दिया था।

"मैं···मैं कुछ न कुछ करूंगा।"

"क्या करेगा तू?"

"मैं तुझे उड़ा ले जाऊंगा, यहां से !···पर तुझे जरा हिम्मत काम लेना चाहिए।"

"रत्ना के फेफड़ों में हवा भर आई है। खांसी आने को ही है··· गई···

फुसफुसाहटें तेज हुईं। माला की आवाज, "अब···अब तू जा

से ! जल्दी !"

"कल मिलेगी ना ?..." वह लौटता हुआ बोला, "वहीं पुरानी जगह।... क्यों ?"

"हां। हां।...तू जा !"

वह चला गया। तम्बू के पिछवाड़े का एक हिस्सा ऊपर उठाकर मछली की तरह बाहर फिसल गया।

माला पुन: लेट गई थी—निश्चिन्त। रत्ना को बहुत दुख हुआ। खांसी न आती तो शायद माला जगन्नाथ से और बातें करती ?...इसका मतलब है कि जगन्नाथ से काफी गहरी दोस्ती है माला की। वे कहीं एकान्त में मिलते हैं ? कहां रत्ना को मालूम नहीं है। पर कोई जगह जरूर है...कल भी रत्ना उससे वहीं मिलेगी। कह रहा था कि वह माला को उड़ा ले जाएगा।...उड़ाना यानी भगाना। भगा ले जाएगा उसे ! माला उसके साथ भाग जाएगी ! इतनी बच्ची नहीं है रत्ना। समझ चुकी है कि माला और जगन्नाथ एकसाथ कहीं जानेवाले हैं। वे चले जाएंगे और विवाह कर लेंगे...विवाह करने के बाद माला को नाचने की क्या जरूरत रहेगी ?...नौकरी करेगा—जगन्नाथ, और माला घर पर उसके लिए रोटी बनाया करेगी और बस !...कोई काम नहीं। कोई बन्धन नहीं। मौज-मजे की जिन्दगी।...फिर कावेरीबाई कभी उसे मार नहीं सकेगी। तब कैसे मारेगी, जब माला तमाशे की औरत ही नहीं रहेगी !...कैसे मार सकेगी ?

रत्ना खुश हुई। अच्छा है कि वे भाग जाएं। यह भी कोई जिन्दगी है कि रात-रात-भर नाच रहे हैं, सिगरेट पी रहे हैं, मार खा रहे हैं। दारूबाजों की बातें सह रहे हैं ! उसने पलक उठाई थी—बड़ी सावधानी से। देखा कि माला करवट लिए पड़ी है। सो गई है शायद...नहीं ! सोई न होगी। सोच रही होगी कि कैसे भागे ? रत्ना जानती है कि भागना बड़ा कठिन काम होता है। श्यामाबाई ने एक दिन बातों ही बातों में एक किस्सा सुनाया था कि उसके साथ काम करनेवाली एक लड़की किसीके साथ भागी...ऐसा चक्कर चलाकर भागी कि कोई उसे पकड़ न ही न सका। बहुत ढूंढ़ा गया था उसे। कई साल बाद मिली थी। जब

मिली थी तब नाच के लिए बेकार हो चुकी थी। उसके चार बच्चे थे और वह बड़े ठाठ से अपने मर्द के साथ रहती थी। मर्द आइसक्रीम बेचता था। दोनों कभी-कभी मंच देखते। पैसे फेंकते और तमाशा देखते !···

अब किसी दिन माला और जगन्नाथ भी ऐसे ही होंगे। वे पैसा फेंकेंगे और उसके के साथ दर्शकों में बैठकर तमाशा देखेंगे। क्या मालूम किसी दिन यहीं का तमाशा देखें···तब रत्ना नाच रही होगी शायद !···

क्या रत्ना को भी नाचना होगा ?

नहीं नाचेगी तो क्या करेगी ? नाचना यहां की हर लड़की की नियति है। रत्ना को याद है, उस दिन कावेरी ने श्यामाबाई से कहा था, "अब रत्ना भी ऐसी हो चुकी है कि स्टेज पर उतार दी जाए···!"

"हां, हो चुकी है।" श्यामाबाई बोली।

'हां।··· थोड़े दिन बाद रत्ना भी तैयार हो जाएगी। है ना ?" कावेरी की आंखों में ऐसा लोभ था जैसे रत्ना लड़की नहीं है, खाने की चीज है।

"हां, यही कोई साल-दो साल। दोनों सहारे के लायक हो जाएंगी।"

"वही तो।" कावेरी बोली, फिर रत्ना की ओर मुड़ी, जो आश्चर्य उनकी बातें सुनती हुई एक ओर चुपचाप बैठी थी, "सुन रही है ना। जरा ध्यान से देखा कर सब। इस साल नहीं तो अगले साल जरूर तुझे स्टेज पर उतारना पड़ेगा।"

रत्ना चुप रही। वे चली गई थीं और रत्ना सोच में पड़ गई थी—क्या उसे भी माला की ही तरह 'तैयार' किया जाएगा ? क्या माला काफी हो चुकी है ?···उसने एकांत पाकर माला से पूछा भी था, "अच्छा, क्या मंच की हर छोकरी को नाचना पड़ता है ?"

"क्या ?" माला ने कुछ परेशान होकर उसे देखा। वह चेहरे पर मेंहदी कर रही थी। पहरी और मुखौटी। मेकअप करना भी सीखना पड़ता है···काफी सीख चुकी थी माला।

"ताई बोलती है।"

"क्या बोलती है ?"

"यही कि तेरे बाद मुझे भी···"

"हाँ, मुझे भी तमाशा करना होगा।" रत्ना के अधूरे प्रश्न प
उत्तर छोड़ दिया था उसने, "तमाशेवालियां हैं। हम सबको न
पड़ता है।"

और रत्ना चुप !…आज तक चुप है। चुप ही रहना होगा। जब
बात समझ ली जाए, तब पूछने की क्या जरूरत। चुप ही रहना चाहि

चुप है रत्ना। हालांकि भीतर सवाल-दर-सवाल उभरे जाते
तर्क-वितर्क करते हुए सवाल। आज भी सवालों ने घेर लिया है। म
और जगन्नाथ भागनेवाले हैं। माला भाग जाएगी और नाच से मुक्त
जाएगी।

पर नाच से क्यों मुक्ति चाहती है माला ?…और रत्ना को ही
पसन्द नहीं है नाचना ?

माला के बारे में वह नहीं जानती, पर अपने बारे में जानती है।
अच्छा नहीं लगता। इतनी भीड़ के सामने पागलपन…हाँ, कावेरी म
पर जो कुछ करती है उसे पागलपन ही लगता है—और पागलपन र
को पसन्द नहीं है। मगर कावेरी कहती है कि पेशा है। पेशा माने धर्म
धर्म से रोटी कमाना। सब अपना-अपना धर्म निबाहते हैं और पे
करते हैं। तबले वाला तबला बजाता है। पटेल पटेलगीरी करता है। ने
भाषण देता है। कायदे-कानून की बात करता है। सब अपना-अपन
पेशा करते हैं और रोटी पाते हैं…कावेरी, माला, रत्ना सबका पेशा नाचन
है। संघ चलाना। तमाशा करना। उन्हें अपना पेशा करना पड़ेगा।

पर जाने क्यों माला और रत्ना को यह पेशा पसन्द नहीं है। कुछ
और करना चाहती हैं जो तमाशा न हो !…क्या करना चाहती हैं ?

माला को मालूम है…रत्ना को नहीं मालूम !…रत्ना सिर्फ इतन
जानती है कि पेशा बदलना पड़ेगा। तमाशा नहीं, कुछ और…

पर क्या ?

यह सोचना है।

कभी न कभी सोच ही लेगी। रत्ना ने एक करवट ली। नींद पलकों
पर झुकने लगी है। झुक आई है…

× × ×

एक जोंक की तरह चिपकाए रही थी दृष्टि !···माला का पीछा करती हुई दृष्टि। जगन्नाथ से मिलेगी वह। कहां मिलेगी ? कब ?··· रत्ना को ध्यान रखना है। क्यों रखना है, यह नहीं जानती। बस, जो होता है कि ऐसा किया जाए। उन दोनों की बातें अच्छी लगती हैं। सुनेगी। सुनने में रत्ना को आनन्द आएगा।

बहुत आनन्द आया।

वे सरकारी पाखाने में मिले। संघ-पार्टी से काफी दूर एकान्त में पड़ता था वह पाखाना। दूसरे दिन माला काफी देर से गई थी उधर। तब, जब उसने देखा था कि जगन्नाथ डिब्बा लिए चला जा रहा है। दोनों ने एक-दूसरे को देखा था। आंखों ही आंखों में कुछ संकेत हुए थे और फिर कम से चल पड़े।

रत्ना ने समझ लिया था कि वे मिलने जा रहे हैं। क्या करे वह ? वह उनके पीछे हो ली थी। आगे-आगे जगन्नाथ। मुंह में बीड़ी, अन्डरवीयर और बनियाइन। पीछे-पीछे माला। एक ओर डिब्बा हाथ में।···और सबसे अन्त में रत्ना। उन दोनों से बचती हुई। हर पल सावधान !

दाईं तरफ जनाना पाखाना है, बाईं तरफ मर्दाना। मर्दाने पाखाने की ओर जाकर जगन्नाथ ने चौकन्नेपन से चारों ओर देखा था, फिर भीतर समा गया। भड़ाम्···किर्र्···दरवाजा बन्द !

माला दाईं तरफ पहुंची। पिछवाड़े का एक चक्कर लिया और फिर मर्दाने में समा गई।

किर्र्···

रत्ना दौड़ पड़ी थी—शायद जगन्नाथ अपने संडास का दरवाजा खोल रहा है।

भड़ाम् !···किर्र्···

दरवाजा बन्द ! दोनों एक में। अब क्या करे रत्ना ?···एक पल ठिठकी रही थी दीवार की ओट में। फिर सूझ गई थी योजना। संडास के पिछवाड़े सूना पड़ा है—जंगल-सा। जिस संडास में माला और जगन्नाथ समाए थे, उसके पीछे दीवार से सटी कचरे की टंकी है। रत्ना उसपर चढ़ गई। रोशनदान पर आंख लगा दी। थोड़ा-थोड़ा धुंधलका फैलने

लगा था। इस वक्त कोई क्यों आएगा ? आएगा तो खिड़की क्यों खाने लगा ?

संसार में वे दोनों निश्चिन्त थे। जगन्नाथ ने माला को भींच रखा था बांहों में। उसे वह अपने करीब सटा रहा था—फिर उसने माला को चूम लिया था और माला भी खूब है। बिलकुल छिपकली की तरह उससे चिपक गई थी। दीवार पर चिपकी छिपकली !···रत्ना को कोई विशेष मजा नहीं आया शुरू में। यह तो सब यों ही है।···कुछ बातें होनी चाहिए···

फिर बातें भी होने लगीं।

जगन्नाथ का दबा स्वर, "हां, अब बोल !···क्या करना है ?"

"तू बता।"

"मैं क्या बताऊं ?"

"गए तो कहां जाएंगे ? कोई घर-द्वार भी तो होना चाहिए !"

"हूं-हूं,···तो पहले मकान ढूंढना पड़ेगा।"

"हां।"

"कहां ?···पहले यह सोच कि कहां जाएंगे ?"

"कहीं भी चले जाएंगे। यहां से दूर···पर-गांव।" जगन्नाथ ने कहा।

"ठीक है।"

"मकान से पहले यहां से निकलना पड़ेगा। समझी।···मकान तो कहीं न कहीं मिल ही जाएगा। पैसे होने चाहिए।"

"कहां हैं पैसे ?"

"हूं-हूं, यही तो चक्कर है।" जगन्नाथ सोच में पड़ गया।

"माई मुझे अगले महीने ही उतार देगी तमाशे में। उससे पहले ही कुछ···"

"हां। वही सोच रहा हूं।"

"कब सोचेगा ?" माला ने निराशा से कहा।

"चिन्ता क्यों करती है। सब ठीक हो जाएगा।"

"तू हर बार यही कह देता है।" वह थकने लगी।

जगन्नाथ ने उसे बांहों में भर लिया। चेहरा उसके कर [illegible]···फिर

माला के होंठों पेर कुछ तपन उँडेल दी···अचानक वह उसके सीने से चोली खींचने लगा···माला ने विरोध किया, "नहीं !···नहीं। यह नहीं। अभी नहीं। लगन···"

"लगन तो होगा ही पगली, पर···यह तो बस, यों ही।"

"नहीं-नहीं!" उसने सख्ती से अपने-आपको उससे अलग कर लिया।

"पर इसमें है क्या?" वह कुछ समझाने लगा। उसने फिर से माला को बांहों में भर लिया, "मैं तुझे प्यार करता हूं, माला! परमात्मा की कसम! बहुत प्यार करता हूं।"

"नहीं।···पहले लगन।" वह कसमसाने लगी, "तू हर बार यही कह-कर···नहीं!"

जगन्नाथ की आंखों में एक नशा उभर आया। माला भी अपने शरीर में एक भूचाल अनुभव कर रही है—तपता और तपाता हुआ भूचाल···हिलाता-डुलाता और लगभग समाप्त कर डालनेवाला भूचाल!···वह अवश होने लगी 'नहीं-नहीं' के स्वर हल्के, और हल्के होने लगे और फिर···

अरे! रत्ना ने अचरज से देखा, अभी अपने-आपको बचा रही थी—और अब?···छिपकली!···

और छिपकली को छीलता हुआ जगन्नाथ!···

रत्ना ने रोशनदान तक पहुंचने के लिए टंकी की दीवार पर एड़ियां उठा रखी थीं। अब उनमें दर्द हो आया है—असह्य हो गया है बिलकुल! उतर आई। बातें तो खास नहीं थीं···लगता था कि कुछ हुआ ही नहीं, उससे अलग माला का वह इन्कार, जगन्नाथ का उसे भींचना···न समझते हुए भी माला का भिंचते जाना···रत्ना एक भारीपन लिए हुए वापस हो ली। उसे वह अजीब, पर अच्छा लगा। उसके अपने शरीर में नीचे से ऊपर तक एक गुदगुदी सी बैठी···पहले तो कभी महसूस नहीं हुई है यह गुदगुदी?···

वह उसके मुंह पर मुंह···छिपकली की तरह चिपक जाती थी माला और वह उसे जकड़कर मसक डालता था।

रत्ना को लगा कि उसके अपने होंठों पर चींटियां रेंगने लगी हैं···ये

लगा था। इस वक्त कोई क्यों आएगा ? आएगा तो पिछवाड़े क्यों आने लगा ?

संडास में वे दोनों निश्चिन्त थे। जगन्नाथ ने माला को भींच रखा था बांहों में। उसे वह अपने करीब सटा रहा था—फिर उसने माला को चूम लिया था और माला भी खूब है ! बिलकुल छिपकली की तरह उससे चिपक गई थी। दीवार पर चिपकी छिपकली !···रत्ना को कोई विशेष मजा नहीं आया शुरू में। यह तो सब यों ही है।···कुछ बातें होनी चाहिए···

फिर बातें भी होने लगीं।

जगन्नाथ का दबा स्वर, "हां, अब बोल !···क्या करना है ?"

"तू बता।"

"मैं क्या बताऊं ?"

"गए तो कहां जाएंगे ? कोई घर-द्वार भी तो होना चाहिए !"

"हूं-ऊं,···तो पहले मकान ढूंढ़ना पड़ेगा।"

"हां।"

"कहां ?···पहले यह सोच कि कहां जाएंगे ?"

"कहीं भी चले जाएंगे। यहां से दूर···पर-गांव।" जगन्नाथ ने कहा।

"ठीक है।"

"मकान से पहले यहां से निकलना पड़ेगा। समझी।···मकान तो कहीं न कहीं मिल ही जाएगा। पैसे होने चाहिए।"

"कहां हैं पैसे ?"

"हूं-ऊं, यही तो चक्कर है।" जगन्नाथ सोच में पड़ गया।

"माई मुझे अगले महीने ही उतार देगी लमारो में। उससे पहले ही
"

हूं।"

माला ने निराशा से कहा।

है। सब ठीक हो जाएगा।"

देना है।" वह पकने लगी।

में भर लिया। चेहरा उसके कर ···फिर

माला के होंठों पर कुछ तपन उंडेल दी···अचानक वह उसके सीने से चोली खींचने लगा···माला ने विरोध किया, "नहीं !···नहीं। यह नहीं। अभी नहीं। लगन···"

"लगन तो होगा ही पगली, पर···यह तो बस, यों ही।"

"नहीं-नहीं !" उसने सख्ती से अपने-आपको उससे अलग कर लिया।

"पर इसमें है क्या ?" वह कुछ समझाने लगा। उसने फिर से माला को बांहों में भर लिया, "मैं तुझे प्यार करता हूं, माला ! परमात्मा की कसम ! बहुत प्यार करता हूं।"

"नहीं।···पहले लगन।" वह कसमसाने लगी, "तू हर बार यही कह-कर···नहीं !"

जगन्नाथ की आंखों में एक नशा उभर आया। माला भी अपने शरीर में एक भूचाल अनुभव कर रही है—तपता और तपाता हुआ भूचाल···हिलाता-डुलाता और लगभग समाप्त कर डालनेवाला भूचाल !···वह अवश होने लगी 'नहीं-नहीं' के स्वर हल्के, और हल्के होने लगे और फिर···

अरे ! रत्ना ने अचरज से देखा, अभी अपने-आपको बचा रही थी—और अब ?···छिपकली !···

और छिपकली को छीलता हुआ जगन्नाथ !···

रत्ना ने रोशनदान तक पहुंचने के लिए टंकी की दीवार पर एड़ियां उठा रखी थीं। अब उनमें दर्द हो आया है—असह्य हो गया है बिलकुल ! उतर आई। बातें तो खास नहीं थीं···लगता था कि कुछ हुआ ही नहीं, उससे अलग माला का वह इन्कार, जगन्नाथ का उसे भींचना···न समझते हुए भी माला का खिंचते जाना···रत्ना एक अहसास लिए हुए वापस हो ली। उसे वह अजीब, पर अच्छा लगा। उसके अपने शरीर में नीचे से ऊपर तक एक गुदगुदी आ बैठी···पहले तो कभी महसूस नहीं हुई है यह गुदगुदी ?···

वह उसके मुंह पर मुंह···छिपकली की तरह चिपक जाती थी माला और वह उसे जकड़कर मसक डालता था।

रत्ना को लगा कि उसके अपने होंठों पर चींटियां रेंगने लगी हैं···ये

चींटियां क्रमशः सीने पर गोल-गोल घेरे बनाती हुई जांघों तक उतर आई हैं और अजीब-सी गुदगुदी पैदा कर रही हैं सारे जिस्म में ! गुदगुदी या कौंध ?···कौंध या जलन ?···जलन या एक बेचैनी ?···रत्ना होंठों को रगड़ने लगी थी। चींटियों की रेंग और तेज़ हो गई···रत्ना ने दांतों में हथेली का गुदगुदा हिस्सा भींच लिया ज़ोर से ! और खुद ही आह भरकर छोड़ दिया !

कम्बख्त माला और जगन्नाथ···क्या कर रहे थे, पर जो कर रहे थे बहुत आनन्ददायक था ! ···

आनन्ददायक, या तकलीफ़देह ! ···अगर माला की जगह रत्ना होती तो···रत्ना का शरीर निराशा से ढीला पड़ गया। एक विचार—कितनी सौभाग्यशालिनी है माला। उसके पास जगन्नाथ है। बलिष्ठ, सुन्दर और आकर्षक मर्द ! मर्द, जो कहता है कि वह उसे ले जाएगा। दूर किसी शहर में। वहां मकान ले लेगा···फिर उस मकान में दोनों रहेंगे···वह कमाया करेगा और माला को खिलाएगा, खाएगा—उनके बच्चे होंगे। बच्चे स्कूल जाया करेंगे···

तमाशे में रहकर यह सब तो हो नहीं सकता ! ···

"तूने माला को देखा ?"

"हूं ?···" चौंक गई थी वह। गनीमत हुई कि घबराहट में बोल न पड़ी···अगर बोल देती तो···उस समय संडास में ही थे दोनों—जगन्नाथ और माला।

"सुनती है, माला कहां है ?···देखा तूने ?" अण्णाजी पूछ रहा था।

"नहीं, मैंने तो नहीं देखा।"

"न जाने कहां मर गई कम्बख्त ! ·· वहां उस्तादजी बैठे हुए हैं।" बड़बड़ाता हुआ इधर-उधर देखने लगा था अण्णाजी। उसके साथ-साथ उसे खोजने का अभिनय करती हुई रत्ना भी···जी हो रहा था कि कह दे, पर कैसे कह सकती है ! क्या अपनी ही बहिन के कपड़े उतारेगी रत्ना ?···

भी नहीं !

"वह···वह आ रही है।" रत्ना बोली। अण्णाजी ने उसी दिशा में खा। माला घुंधलके के बीच से डब्बा लिए लौट रही थी। अण्णाजी ने चिल्लाकर कहा, "भई, जल्दी आ ! उस्तादजी बैठे हैं।"

"अच्छा।" वह दूर से ही बोली। चाल तेज की। अण्णाजी उस म्बू में समा गया था, जिसमें माला की शिक्षा के लिए वाद्य-मंडली प्रतीक्षा र रही है।

रत्ना वहीं खड़ी देखती रही। माला ने हाथ साफ किए। अपने तम्बू ं गई। वापस निकलने में उसे कुछ वक्त लगा। पर जब निकली तब कपड़े ंवरे हुए थे। रास्ते में रत्ना से बोली थी, "तू नहीं आ रही ?···आ !"

"नहीं। मेरा सिर दुख रहा है।"

"तो खड़ी क्यों है। अपने तम्बू में सो जा।" माला ने हिदायत दी और चली गई—नाचेगी। दो-ढाई घण्टे तक नाचती ही रहेगी।

रत्ना ने एक गहरी सांस ली। इस बार देखा कि जगन्नाथ भी डब्बा लिए धुंधलके से निकला आ रहा है। कितने चालाक हैं दोनों। रत्ना ने सोचा और अपने तम्बू में आ समाई।

कहता था कि माला से बहुत प्यार करता है। उसे दूर किसी शहर में ले जाएगा···कितनी, सौभाग्यशालिनी है माला ! माला भी उससे प्यार करती होगी। करती होगी क्या, करती ही है।

रत्ना लेट रही। अभी-अभी बिरजू एक लालटेन जलाकर तम्बू में रख गया है। उसका काम यही है। पास के तम्बू से घुंघरुओं की झन-झनाहट उठने लगी। रत्ना का जी हुआ कि हंसे। मूर्ख हैं सब ! उस चिड़िया को बांधना चाहते हैं, जो उड़नेवाली है। ट्रेनिंग दे रहे हैं उसे !···

अच्छा कर रही है माला ! जगन्नाथ भी खूब अच्छा आदमी है।

क्या रत्ना ऐसा नहीं कर सकती ? उसे नहीं मिल सकता कोई जगन्नाथ ? जगन्नाथ जैसा ही होना चाहिए। जो कहे कि कहीं दूर ले जाएगा।

क्या ऐसा नहीं हो सकता कि जगन्नाथ ही उसे···पर नहीं। वह रत्ना को क्यूं ले ज

तब ?

तब क्या ऐसा नहीं हो सकता कि रत्ना को भी वे अपने साथ ले जा
माला और जगन्नाथ !

हां, यह हो सकता है।···पर कैसे होगा ? तब होगा जब माला औ
जगन्नाथ की चोरियां रत्ना के सामने पूरी तरह खुल जाएं। तीनों ए
दूसरे के सामने साफ-साफ आ जाएं। पर कैसे आ सकते हैं ?

यह करना रत्ना के हाथ है।···कर देगी। आज ही—अभी !

और यही किया था उसने। माला नाच से लौटी तो रत्ना उस
उलझ गई।

माला बहुत थकी हुई थी। और दिनों से ज्यादा थकी हुई अन् रं
थी।

"भक्का !···"

"क्या ?"

"एक बात पूछूं ?"

"पूछ।" माला घुंघरू खोलती हुई बोली। बिलकुल लापरवाह। उ
क्या मालूम कि रत्ना उसे चौंकानेवाली है।···

रत्ना ने पूछा, "जगन्नाथ तुझे प्यार करता है ना ?···क्यों ?"

माला की गांठ खोलती अंगुलियां घुंघरुओं से टकरा गईं। चेहरे प
सन्नाटा। आवाज में हिलक, "यह···यह तुझे कैसे···"

"मुझे सब मालूम है, भक्का !" रत्ना ने अकड़कर कहा, "स
मालूम है। आज मैं सब देख रही थी।···कल भी देख रही थी।"

माला ने घुंघरू खोलना छोड़ दिया। एक पैर का उतर गया था।
वह घबराकर तम्बू में इधर-उधर देखती हुई रत्ना के पास आ बैठी, "क्या
देखा तूने ?"

"सब !···" रत्ना और अकड़ी। समझ गई कि माला उससे डर
रही है। बोली, "उधर संडास में तुझे जगन्नाथ गले लगा रहा था।···"

माला कांपने लगी। धमकी-भरे स्वर में बोली, "धीरे बोल।"

"अच्छा।" और रत्ना सुनाने लगी थी। बिलकुल प्रारंभ से—किस
गई रात जगन्नाथ तम्बू में घुसा था···फिर संडास में कैसे गया···

पीछे-पीछे रत्ना किस तरह गई और वह सब जो देखा था। सुना था।

माला के चेहरे पर पनीला बादल उतर आया। खूब गहरी घटा-सा अन्धेरा। दबे स्वर में बोली थी, "मेरी बहिन है ना तू?···"

"हां।"

"फिर एक बात मानेगी मेरी?

"क्या?"

"किसीसे कहना नहीं कुछ।···मैं···मैं तुझे पांच रुपये दूंगी। हें?"

"मुझे रुपये नहीं चाहिए।"

"फिर?" डरकर माला ने सवाल किया।

रत्ना ने उसके चेहरे की ओर देखा। आंखों के भय को समझा। जिद के स्वर में कहा, "मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगी।"

"किसके साथ?"

"तेरे और जगन्नाथ के साथ। तुम दोनों भागनेवाले हो···?"

"चुप!···" माला ने अपनी हथेली रत्ना के मुंह पर रख दी।

सहमकर रत्ना चुप हो गई थी। थोड़ी देर माला भी चुप रही थी, फिर बोली, बहुत दबी आवाज में, "कहां चलेगी?"

"जहां तुम जाओगे। मुझे भी संग अच्छा नहीं लगता है अक्का। मैं भी तुम्हारी ही तरह···"

"अच्छा-अच्छा।" भयातुर माला ने पुनः चारों ओर देखा, फुसफुसाई, "मैं तुझे ले चलूंगी साथ, पर···पर अभी नहीं।"

"कब?"

माला सोच में पड़ गई। किस तरह बहलाया जा सकता है उसे? बहलाना ही एक चारा है। डांटा नहीं जा सकता। कहने लगी थी, "रत्ना अभी तो हमारा ही ठिकाना नहीं है। जब कहीं पर जम जाएंगे, तब मैं धीरे से किसी दिन जगन्नाथ को भेजकर तुझे बुलवा लूंगी। ठीक है?"

"पर···"

"पर क्या, जरा सोच।" माला ने उसे समझाया था, "एक-एक कर निकलना ठीक रहेगा। अगर दोनों एकदम गए तो न मैं निकल पाऊंगी,

न तू !···ऐसे मामलों में धीरज से काम लेना चाहिए।"

"अच्छा।" रत्ना ने स्वीकार लिया। यह सोचकर खुश थी कि उसकी योजना सफल हो चुकी है।

"पर···पर एक ख्याल रखना, किसीको ज़रा भी मालूम नहीं होना चाहिए कि···"

"तू निश्चिन्त रह।" रत्ना ने उसे विश्वास दिला दिया था, फिर भी माला आश्वस्त नहीं हुई। जब-जब रत्ना को सामने पाती, उसे अपने ऊपर फैली हुई एक गहरी छाया की तरह अनुभव करती। शक्तिशाली और गहन छाया···तरह-तरह से उसकी खुशामदें करती रहती। हर मामले में उसका विशेष ख्याल रखती और हर क्षण उसके अस्तित्व की महत्ता स्वीकारती।

रत्ना समझती थी कि यह सब क्यों होता है और यह सोचकर निश्चिन्त थी कि एक दिन माला उसे भी अपनी ही तरह इस जाल से निकाल लेगी···

पर किस दिन, कब ?···दिन पर दिन आ रहे थे और वह दिन पास आ रहा था, जिस दिन पहली बार स्टेज पर माला को उतरना था···कावेरीबाई के निश्चित विचार का दिन !···क्या मंच पर उतरने के बाद माला को ले जाएगा जगन्नाथ ? क्यों नहीं उससे पहले ही···

एक दिन पूछ भी लिया था उसने, "मनका, तू कब जाएगी ?"

"जाऊंगी।···बहुत जल्दी ही जाऊंगी।" माला ने उत्साहित होकर कहा था। रत्ना समझ गई कि एक-दो दिन में ही किसी दिन···सोचकर खुश हुई। मज़ा आएगा उस दिन ! सारे दल में सन्नाटा फैल जाएगा। कावेरी, दण्डाजी, विमन···सबके सब पागलों की तरह इधर-उधर गांव सूंघते फिरेंगे और तब तक माला दूर, न जाने किस शहर में जा पहुंचेगी। अच्छी और इज़्ज़तदार ज़िन्दगी जीने के लिए।

अगले सप्ताह की तारीख तय हो गई थी। जुलाई का महीना और पांच तारीख। सबसे पहला प्रोग्राम पुणताई में ही होगा। वहां गुलाबबाई की पार्टी चल रही है इन दिनों। उस पुष्पभाड़ी का शोर है जिसे लेकर इन दिनों कुमार ने कावेरी का कब्ज़ा किया रखा है। कावेरी भी खूब तेज़ औरत

ने भी तय कर लिया है कि गुलाब को पानी पिलाकर ही
!...और सब कहते हैं कि पिला भी देगी पानी। माला उसके पास
र में इसा शरीर, आकर्षक सौन्दर्य, आवाज सधीली, आंखें बिजली
...गुलाब की पार्टी को पहली थाप पर ही पाताल पहुंचा सकती
! तिसपर कावेरी ने उसे ट्रेन्ड भी इस तरह किया है कि रग-रग
सुर भर दिए हैं। फुलझड़ी क्या करेगी उसका मुकाबला। अभी
हुए, शंकरराव बेलापूरकर को खास तौर से इसीलिए बुलाया था
ने। उस इलाके का नेता है। फुलझड़ी का मालिक...! माला का
दिखाकर कावेरी ने उससे सवाल किया था, "क्या हाल है,
देखा, यह है मेरा लहू! कावेरी का लहू। यह मैं ही हूं। बोल
ठली में! बहां रहेगी गुलाब की फुलझड़ी ?"
ला किनारे खड़ी थी। दबी नज़र, सहमकर दोहरा होता बदन,
होठों पर कम्पन...पूरे नाच में वह बूढ़ा इस तरह उसे देखता रहा
कभी गिलास में घोलकर पी जाएगा।...और घुल भी जाएगी
माला! शक्कर की गोली-सी।
र समय भी उसी तरह देख रहा था। कावेरी की बात पर चुप रहा
..
की टकटकी कावेरी ने चेहरे के सामने हथेली हिलाकर तोड़ी थी,
गया है शंकरराव!..."
हिहि...हिह्..." बेहूदगी से हंस पड़ा था वह। यह हंसी एक
भी थी, उत्तर भी।
वेरी बोली, "तसल्ली हुई कि नहीं ?"
तुम्हारी बात ही और है, कावेरीबाई!...वह गुलाब सारी जिन्दगी
एड़ी के नीचे रही है, उसकी बेटी में क्या दम है कि तुम्हारी बेटी
जाए ?...माला से उस छोकरी का जोड़ ही नहीं है।...यह
री बार में ही उसे बिठा देगी!..."
वेरी ने संकेत से माला, रत्ना वगैरा को वहां से चले जाने के लिए
। रत्ना को पहले दरजे का गुण्डा लगा था शंकरराव...है भी।
र की तसवीर रत्ना की आंखों में अब अर्थयुक्त हो चुकी थी, जिस

और माला छोड़ रही है इस शहर को।

किसी दिन रत्ना भी छोड़ देगी। माला ने वायदा किया है। पहले वह निकलेगी और फिर रत्ना···किसी ऐसे ही दिन जगन्नाथ भइया और रत्ना भी माला की ही तरह किसी अंधेरी रात में···ऐसी ही अंधेरी रात में इस गांव की दीवारों के पार हो जाएगी।

अनायास ही रत्ना को लगा कि माला आज ही चली जाएगी। पूछ लिया था उसने, "क्यों अक्का, आज ही जाएगी ?"

"हूं !" माला फुसफुसाई। पास ही लेटी हुई थी। बक्सा सामने है। सबसे नीचे दबा रहता था, आज ऊपर निकाल रखा है। कपड़े दोपहर ही बटोर लिए थे। सब खिड़कियों से बन्द कर लिए हैं।

रत्ना चुप थी, पर उसके देखने के भाव से माला को लग रहा था कि उत्तर देना जरूरी है—कम से कम रत्ना के सन्तोष के लिए। पर क्या उत्तर दे ? यह तो बताया नहीं जा सकता कि वह आज ही जाएगी। जगन्नाथ ने साफ-साफ कह दिया था कि उसे मालूम नहीं होना चाहिए। जितना हो चुका है, वही काफी है। जाने के लिए विशेष सावधानी बरती जाए। और विशेष सावधानी रखते हुए ही उन दोनों ने रात के दूसरे पहर में निकलने का कार्यक्रम बनाया था—आधी रात के बाद। वह वक्त ऐसा होता है कि सामान्यतः सब गहरी नींद में समाए होते हैं। रत्ना भी समा चुकी होगी।

"क्यों अक्का ?" उसने सवाल दोहराया और माला को कहना पड़ा, "नहीं, आज नहीं। कल या परसों।"

"पर तूने कपड़े तो आज ही लगा लिए हैं।" रत्ना ने पूछा।

"तैयारी पहले से ही करनी पड़ती है।"

रत्ना का समाधान हो गया। उसने करवट ले ली थी—निश्चिन्त है और अब सो सकती है। माला कल या परसों जाएगी।···

और माला जाग रही है···सारी रात ही जागना होगा और [illegible] न जाने कब तक जागना ही पड़े। जगन्नाथ ने कहा था कि [illegible] घण्टे तो पैदल ही चलना पड़ेगा फिर स्टेशन का ट्रेन [illegible]

माला ने एक गहरी सांस ली। [illegible]

निश्चिन्त !···सारी जिन्दगी के लिए निश्चिन्त !

कावेरी के तम्बू में आजकल सब घिरे रहते हैं। जोर-शोर से माला को स्टेज पर उतारने की तैयारियां चल रही हैं। छोटी-छोटी चीज़ों का ध्यान रखा जाता है। दर्जनों किस्म के इन्तज़ाम···मूर्ख हैं वे ! उन्हें क्या मालूम कि माला—उनकी एकमात्र आशा—बुझने ही वाली है। कहीं और जाकर रोशनी करेगी। वहां सिर्फ जगन्नाथ होगा और माला···

माला ने अनुभव किया, जैसे शरीर में जगह-जगह से एक सुरसुरी उठ रही है। कुछ परिचित, कुछ अपरिचित। मीठी सुरसुरी। कितनी मीठी !

जब जगन्नाथ ने यह कहा था कि ढूबती रात निकलेंगे, तब माला को भय लगा था। किसी और से नहीं, अपने-आप से। कहीं ऐसा न हो कि वह सोती ही रह जाए···उस वक्त बहुत ठण्डी और आरामदेह हवा चलती है। असली नींद का वक्त। अभी कुछ देर पहले आकर यहां लेटी, तब भी यही डर था, पर अब···अब महसूस होता है कि व्यर्थ था डर ! ··· नींद आ ही नहीं सकती। न जाने कौन-सी बिजली आ समाई है माला के शरीर में। उत्साह की बिजली। तनिक भी आलस नहीं।

कितने बजे होंगे ?···माला ने बेसब्री से सोचा—शायद ग्यारह··· साढ़े ग्यारह। घड़ी नहीं है उसके पास। कहां से हो सकती है ? अभी कमाती तो है नहीं। एक दिन कावेरी से कहा था। उसकी कलाई-घड़ी देख-देखकर माला के मन में घड़ी का लोभ आता था। इसीलिए कह बैठी थी और कावेरी का उत्तर था, "ठीक है, तुझे घड़ी ले दूंगी। पर तब, जब तू मुझे एक दण्डिया दिलवाएगी। चन्देरी की दण्डिया। मोटे-जरीवाली।"

"मैं कहां से दिलवाऊंगी माई ? मेरे पास पैसे कहां से आएंगे ?" उसके जवाब पर माला चकित होकर बोली थी।

और कावेरी हंसी, "आएंगे पैसे !···बहुत-से पैसे आएंगे। चिन्ता मत कर। एक बार उतर जा स्टेज पर, फिर देख कितने पैसे ही पैसे !···"

बुझ गई थी माला। न कभी स्टेज पर उतरेगी, न कभी घड़ी···पर क्यों नहीं पहन सकती घड़ी ? जगन्नाथ पहनाएगा। कहता है तुझे सिर-आंखों पर बिठाकर रखूंगा। भले ही दिन-रात मेहनत क्यों न करूं,

तुझे सोने से लाद दूंगा—नीचे से ऊपर तक !"

प्यार, आशा और विश्वास की सौ-सौ गंगा लहरों ने माला को
लिया— छू क्या लिया, नहा ही दिया। कुछ बोली नहीं थी।

उसने बांहों में भर लिया था—गरम-गरम स्पर्श, वैसे ही तपते होंठ

माला ने पुनः शरीर में सुरसुरी अनुभव की। जगन्नाथ में एक
अजीब-सी ताकत है। किसी भी बात का नकार हो, इस गुण से पल-
में स्वीकार बना लेता है। कल भी यही हुआ था। उस वक्त मालार
गई थी, जब उसने प्रस्ताव किया कि कावेरी का बक्सा खोलकर
साकिट निकाल ले जिसमें कम से कम तीन तोले सोना है। मगर उ
साथ ही रखी अंगूठियां भी उड़ा दे तो ठीक रहेगा। तीन-चार तोले स
उनमें निकलेगा। सब पुराने सोने की हैं—असल ! कम से कम दो म
का खर्च निकल आएगा। जाते ही तो कहीं काम मिल नहीं जाएगा···

"नहीं···नहीं, यह मुझसे नहीं होगा।···भाई बड़ी क्रोधी है।" म
साफ मुकर गई थी···

"पर जब तक उसे मालूम होगा, तब तक तो हम न जाने कहां प
चुके होंगे ?" वह बोला, "ज़रा समझदारी से काम ले माला !
बिलकुल खाली हाथ हैं। कुछ नहीं है अपने पास। यहां से गए तो कुछ
खाएंगे।···कहां से खाएंगे, बोल !"

"पर···नहीं-नहीं···"

"तुझे मुझपर विश्वास नहीं है, क्यों ?" जगन्नाथ ने बांहों
नागपाश कस दिया माला के गिर्द।

"नहीं जगन्नाथ ! यह बात नहीं है। मगर तू जानता है कि भाई
वह असमंजस में पड़ गई थी। नहीं मानेगी तो जगन्नाथ समझेगा कि
पर विश्वास नहीं है और मान ले तो कावेरी का भय !···यदि उसे म
हो गया या किसीने देख लिया तो चिन्दियां बिखेर दी जाएंगी
की। नहीं, चोरी नहीं करेगी वह।

और जगन्नाथ उसे बाध्य कर रहा था, "तू बिलकुल मूर्ख है।
पगली, किसे मालूम होगा। हो भी गया तो कौन है जो हमें
सकेगा···और फिर जो कुछ हम कर रहे हैं, वह चोरी नहीं है क्या ?

निश्चिन्त !···सारी ज़िन्दगी के लिए निश्चिन्त !

कावेरी के तम्बू में आजकल सब घिरे रहते हैं। ज़ोर-शोर से मा
को स्टेज पर उतारने की तैयारियां चल रही हैं। छोटी-छोटी चीज़ों
ध्यान रखा जाता है। दसियों किस्म के इन्तज़ाम···मूर्ख हैं वे ! उन्हें
मालूम कि माला—उनकी एकमात्र आशा—बुझने ही वाली है। क
और जाकर रोशनी करेगी। वहां सिर्फ़ जगन्नाथ होगा और माला···

माला ने अनुभव किया, जैसे शरीर में जगह-जगह से एक सुरसुरी उ
रही है। कुछ परिचित, कुछ अपरिचित। मीठी सुरसुरी। कितनी मीठी

जब जगन्नाथ ने यह कहा था कि डूबती रात निकलेंगे, तब माल
को भय लगा था। किसी और से नहीं, अपने-आप से। कहीं ऐसा न ह
कि वह सोती ही रह जाए···उस वक्त बहुत ठण्डी और आरामदेह हव
चलती है। असली नींद का वक्त। अभी कुछ देर पहले आकर यहां लेटी
तब भी यही डर था, पर अब···अब महसूस होता है कि व्यर्थ था डर!··
नींद आ ही नहीं सकती। न जाने कौन-सी बिजली आ समाई है माला के
शरीर में। उत्साह की बिजली। तनिक भी आलस नहीं।

कितने बजे होंगे ?···माला ने बेसब्री से सोचा—शायद ग्यारह···
साढ़े ग्यारह। घड़ी नहीं है उसके पास। कहां से हो सकती है ? अभी
कमाती तो है नहीं। एक दिन कावेरी से कहा था। उसकी कलाई-घड़ी
देख-देखकर माला के मन में घड़ी का लोभ आता था। इसीलिए कह
बैठी थी और कावेरी का उत्तर था, "ठीक है, तुझे घड़ी ले दूंगी। पर
तब, जब तू मुझे एक दण्डिया दिलवाएगी। चन्देरी की दण्डिया। गोटे-
।"

आई ? मेरे पास पैसे कहां से आएंगे ?"
होकर बोली थी।

आएंगे। चिन्ता
कितने पैसे ही पैसे !···"
उतरेगी, न कमी घड़ी···पर
। कहता है तुझे सिर-
-रात मेहनत क्यों न करूं,

तुझे सोने से लाद दूंगा—नीचे से ऊपर तक !"

प्यार, आशा और विश्वास की सौ-सौ गंगा लहरों ने माला को छू लिया—छू क्या लिया, नहा ही दिया। कुछ बोली नहीं थी।

उसने बांहों में भर लिया था—गरम-गरम स्पर्श, वैसे ही तपते होठ…

माला ने पुनः शरीर में सुरसुरी अनुभव की। जगन्नाथ में एक यही अजीब-सी ताकत है। किसी भी बात का नकार हो, इस गुण से पल-भर में स्वीकार बना लेता है। कल भी यही हुआ था। उस वक्त माला कांप गई थी, जब उसने प्रस्ताव किया कि कावेरी का बक्सा खोलकर वह लॉकेट निकाल ले जिसमें कम से कम तीन तोले सोना है। मगर उसके साथ ही रखी अंगूठियां भी उड़ा दे तो ठीक रहेगा। तीन-चार तोले सोना उनमें निकलेगा। सब पुराने सोने की हैं—असल ! कम से कम दो महीने का खर्च निकल आएगा। जाते ही तो कहीं काम मिल नहीं जाएगा…

"नहीं…नहीं, यह मुझसे नहीं होगा।…भाई बड़ी क्रोधी है।" माला साफ मुकर गई थी…

"पर जब तक उसे मालूम होगा, तब तक तो हम न जाने कहां पहुंच चुके होंगे ?" वह बोला, "जरा समझदारी से काम ले माला ! अपुन बिलकुल खाली हाथ हैं। कुछ नहीं है अपने पास। यहां से गए तो कुछ तो खाएंगे।…कहां से खाएंगे, बोल !"

"पर…नहीं-नहीं…"

"तुझे मुझपर विश्वास नहीं है, क्यों ?" जगन्नाथ ने बांहों का नागपाश कस दिया माला के गिर्द।

"नहीं जगन्नाथ ! यह बात नहीं है। मगर तू जानता है कि भाई…" वह असमंजस में पड़ गई थी। नहीं मानेगी तो जगन्नाथ समझेगा कि उसपर विश्वास नहीं है और मान ले तो कावेरी का भय !…यदि उसे मालूम हो गया या किसीने देख लिया तो चिन्दियां बिखेर दी जाएंगी माला की। नहीं, चोरी नहीं करेगी वह।

और जगन्नाथ उसे बाध्य कर रहा था, "तू बिलकुल मूर्ख है। अरे पगली, किसे मालूम होगा। हो भी गया तो कौन है जो हमें पकड़ सकेगा…और फिर जो कुछ हम कर रहे हैं, वह चोरी नहीं है क्या ?"

माला ने करवट ली। रत्ना के नथुनों से गहरी नींद फूट पड़ी है। धीमी धीमी गुर्राहट। अच्छा है यह। माला आश्वस्त हुई। जाने क्यों उसका मन हुआ कि रत्ना का माथा चूम ले···अब नहीं देख सकेगी रत्ना को। न जाने कहां, किस गांव में जाकर बसना होगा। सब कुछ जगन्नाथ पर निर्भर है। जहां ले जाएगा, वहीं जाएगी।

दो के घण्टे बजे···माला अधिक चैतन्य होकर लेटी रही। अब वक्त हो चुका है। किसी भी क्षण तम्बू के बाहर सीटी बजेगी। वैसी ही सीटी, जैसी दर्शक तमाशे के वक्त स्टेज पर नाचनेवाली को देखते हुए लगाते हैं मुंह में दो अंगुलियां डालकर बजाई जाती है वह सीटी···जगन्नाथ भी बजाता है। खूब तेज स्वर होता है। कह दिया था कि जैसे ही एक सीटी बजे, तू तैयारी शुरू कर देना और दूसरी पर तम्बू से बाहर···

पिछवाड़े आकर बजाएगा सीटी। माला एकदम तैयार है। पहले बक्सा बाहर करेगी, फिर खुद बाहर हो जाएगी। आज एक और सुविधा भी मिल गई है। अम्माजी बाहर सोया हुआ है।

···फिर ढाई बज गए···माला कुछ बेचैन हो उठी। कहीं ऐसा तो नहीं है कि वह खुद सो गया हो—माला को प्रतीक्षा के लिए कहकर खुद नींद ले रहा हो···पर यह सिर्फ वहम रहा माला का। दो पल बाद ही तेज सीटी की आवाज हुई।

फुर्ती से माला उठी। ट्रंक पिछवाड़े की ओर सरकाया—और तम्बू को लटकी हुई खाल के नीचे से खुद सरकने ही वाली थी कि चौंक गई। बाहर से भाग-दौड़ की आवाजें आने लगीं।

"चोर!···चोर!···"

सहमकर माला ने ट्रंक वापस भीतर खींच लिया। उसे यथावत् रखा और अपातुर कान बाहर लगा दिए। अब कई आवाजें आने लगी थीं। शायद सभी जाग गए थे—अम्माजी, दयाया, कावेरी, विरज और कामगार छोकरे!···

कुछ गालियां, "साले!···हरामी!···चोर!···"

माला चुप।

जगन्नाथ ने कहा, "ठीक है। इसका मतलब है कि तुझे यह डर रहा है कि मैं चोरी करवाकर भाग जाऊंगा। क्यों ?..."

"नहीं नहीं।"

"फिर ?"

"डर लगता है।" माला ने कोरी आवाज़ में कहा था।

"और तब डर नहीं लगता जब मुझसे मिलती है। क्यों ?" वह तर्क करने लगा, "तब डर नहीं लगेगा, जब रात को मेरे साथ भागेगी। ऐं ?"

माला निरुत्तर।

"तू बेकार ही डर रही है।"

"पर..."

"पर-वर कुछ नहीं !...पार कर दे, वे चीज़ें। हिम्मत के बिना कुछ नहीं होता। वरना समझ ले कि सारी ज़िन्दगी मुझे और तुझे यहीं सड़ना पड़ेगा..."

"नहीं नहीं।"

"तो शाम तक मुझे ला देना सब।" उसने आदेशपूर्ण स्वर में कहा था। एक बार फिर उसे बाहों में भरकर चूमा था और चला गया।

उसके जाने के बाद माला एक नशे में भर गई थी। स्पर्श, आदेश और उसका विश्वास—तीनों किसी नशीले प्रभाव से युक्त थे। माला ने बड़ी सफ़ाई से कावेरी का बक्स खोला था। लाकिट निकाला था और तीन अंगूठियां...सारी चीज़ें शाम को उसे सौंप दी थीं।

उस समय रत्ना भी मौजूद थी। हालांकि वह समझ कुछ भी न सकी होगी। माला ने इस सफ़ाई से उन चीज़ों की पुड़िया जगन्नाथ को दी थी कि वह देख भी न सकी...और जगन्नाथ पुड़िया लेते ही तुरन्त चला गया...

रात का प्रोग्राम पहले ही तय हो चुका था !...माला को उसका इन्तज़ार है।

कावेरीबाई के तम्बू में अब भी मीटिंग चल रही है। पगले !...माला के लिए सब कुछ सोच रहे हैं और इधर माला ने अपने लिए न जाने कितना कुछ सोच लिया है...सब सोचा हुआ आज कर भी डालेगी।

हाथों में वही पुड़िया है जो माला ने शाम को जगन्नाथ को दी थी। हां, बिलकुल वही पुड़िया है। रत्ना को रंग याद है कागज का। पीला था। यह भी पीला कागज है।

"ले जाओ इसे !···सीधे थाने ले जाओ ! कमीना ! नमकहराम ! जिस थाली में खाया उसीमें···"

और वह खामोश। सिर्फ माला की ओर देखे जा रहा है।

और माला धरती की ओर देखने लगी है। जी होता है, कह दे—'मैंने दी थी उसे पुड़िया !···चोरी मैंने की है !···मैं उसके साथ भागनेवाली थी···' पर कुछ भी नहीं कह पा रही है।

और वह भी कुछ नहीं कह रहा है। चुप पड़ा है। चुप पड़ा है। इस तरह जैसे चोरी उसीने की थी।

बिरज ने उसे गिरेबां से पकड़कर ऊपर उठा लिया था और वह इस तरह उठ आया जैसे एक कमीज हैंगर पर लटकी रहती है—ढीला शरीर, ढीला जगन्नाथ !···

बिरज और अम्माजी उसकी दोनों बांहें पकड़कर थाने की ओर बढ़ गए। माला देखती रही थी—चुप !···

और माला को देखती रही रत्ना। नीच !···कायर···रत्ना की इच्छा भी हुई थी कि चीख-चीखकर सबको सुना दे—'इस सबमें अक्का का पाप है !···अक्का ने उसके साथ भागने का प्रोग्राम बनाया था। यही थी, जिसने वह पुड़िया···' किन्तु रत्ना कह नहीं सकी थी।

बिरज और अम्माजी, जगन्नाथ को लेकर अन्धेरे में गायब हो गए थे।

भीड़ छंटी। कुछ बड़बड़ाहटें, "वह तो अच्छा हुआ कि बिरज संडास गया था। लौटते में उसने देख लिया कि यह रोगड़ा[1] भागनेवाला है। माला के तम्बू तक तो आ ही चुका था, फिर निकलते मे क्या देर लगती !···"

और माला का जी धड़धड़ाने लगा। रत्ना उसके करीब खड़ी थी। उसे घूरती हुई जैसे धमकी दे रही हो—'क्यों अक्का, बतला दूं सब ? तू चोट्टी है !···तूने उसे फंसवाया है !'

---

१. लंगार

माला का दिल बैठने लगा। शायद जगन्नाथ को पकड़ लिया है उन्होंने। पिछवाड़े के अन्धेरे में किसीने देख लिया होगा···टोकते ही वह भाग खड़ा हुआ होगा और अब !···क्या बाहर निकलकर देखे माला !···

देखना चाहिए।···नहीं देखना चाहिए !···हो सकता है कि वह पिटते ही सारा सच उगल बैठे। यह भी कि माला ने उसे जेवर लाकर दिए थे, वह उसके साथ भागनेवाली थी···एक कम्पन माला के शरीर में व्याप गया। लगा कि गिर पड़ेगी—गश आ जाएगा।

बाहर से अब धौल-धप्पड़ों के स्वर आ रहे थे···इन स्वरों के साथ घुली गालियां···माला पर रहा नहीं गया। बाहर निकल आई। देखा कि सब लोगों ने घेरे में ले रखा है जगन्नाथ को ! अण्णाजी और बिरज उसे पीट रहे थे···कमीज फट चुकी थी उसकी। होंठों के किनारों पर लहू की छोटी-छोटी धारें···एक कामगार लड़का पास ही लालटेन लिए खड़ा था।

कावेरी ने चीखकर कहा, "कुत्ते ! मैंने तुझे रोटी दी और तू मेरी सारी जिन्दगी की कमाई चोरी कर रहा था। बिरज !···इस पाजी को थाने में ले जा। जल्दी !" फिर वह पुड़िया खोलकर जेवर देखनी लगी—लाकिट, अगूठियां···बड़बड़ाई, "विठोबा ! तेरी बड़ी कृपा। मैं तो लुट जाती !···बरबाद हो जाती !"

बिरज ने इस बार कई घूंसे और लातें जगन्नाथ के मुंह और पीठपर जमा दीं। वह धरती पर बिछ गया हांफता हुआ। माला ने देखा कि उसकी आंखें भयातुर उन सबकी ओर इस तरह देख रही थीं जैसे कसाई-खाने में एक अधमरी गाय पड़ी हो !···

माला को लगा था कि वह कह देगा। अभी ही कह देगा कि इस सब में माला भी शामिल है। कावेरी की अपनी बेटी।

शोर सुनकर रत्ना भी आ खड़ी हुई। पलकों से नींद इस तरह उड़ गई है, जैसे सोई हो न थी। आश्चर्य से अधमरे पड़े हुए जगन्नाथ को देख फिर माला की ओर···पल-भर में अन्दाज लगाया। कुछ हुआ है। हो सकता है कि माला और जगन्नाथ साथ-साथ पकड़े गए हों, यह भी हो सकता है कि वे भाग रहे हों और···तभी रत्ना ने देखा कि कावेरीबाई

माला ने भी कुछ नहीं कहा।···वह भी जगन्नाथ से प्यार करती थी।···

कितनी नीचे गिरी हुई माला और कितना ऊंचा उठा हुआ जगन्नाथ।

माला ने खबरें सुनी थीं चुपचाप। रत्ना ने भी। और हर बार माला के प्रति उसकी घृणा तीव्रतर होती गई थी··· भीतर गालियां उबलती थीं। यदि माला बड़ी बहिन न होती तो रत्ना उसके चेहरे पर थूकती!

तीसरे दिन ही एक और खबर आई। जगन्नाथ को साल-भर की सजा हो गई है। अदालत में पहली पेशी पर ही उसने स्वीकार लिया था कि वह चोर है और उसने चोरी की है।

सबसे पहले रत्ना को ही मिली थी खबर। माला बाहर नहीं निकली थी तम्बू से। रत्ना ने भीतर आकर उसे यह खबर दी, फिर एक और लताड़, "अबका!···तू नर्क में जाएगी। तेरे कारण वह फंसा है। तेरे कारण सजा काटेगा!···तू डरपोक भी है, धोखेबाज भी!"

और हमेशा की तरह माला चुपचाप सुनती रही। हमेशा सुनती रहेगी। जो सच है, वह उसे मानना ही पड़ेगा। सच है कि माला ने जगन्नाथ को धोखा दिया। यह भी सच है कि माला कायर है!···और यह भी सच है कि वह नर्क में जाएगी। जाएगी क्या, जा ही चुकी है। जिस आत्मदाह में जल रही है, वह नर्क नहीं है तो क्या है। रोना चाहती है, पर रो नहीं पाती। सब कुछ उगल देना चाहती है, पर उगल नहीं सकती!···नर्क···एकदम नर्क!···

रह-रहकर जगन्नाथ का चेहरा उभर आता है। दयाई चेहरा। किस तरह देख रहा था माला की ओर?···और माला ने नजरें चुरा ली थीं। अगर माला कह देती कि वह भी चोरी में शरीक थी तो इससे अधिक क्या होता कि सारी पार्टी उसे कोसती। कावेरी उसे हरी छड़ी लेकर पीटती, और बस!···जगन्नाथ की तो वह दशा न होती, जो हो गई है। अब सींखचों में होगा और माला के संवाद याद करता होगा। संवाद, जिन्हें बोल-बोलकर माला ने उस दम्बू-से आदमी को अचानक लड़की भगाने तक के लिए तैयार कर लिया था। वही तो थी जिसने जगन्नाथ में साहस भरा था। वर्ना वह तो बिलकुल लचीला तार था। जिधर ज़ोर पड़ता,

सबकी तरह वे दोनों भी उसके साथ थे या नहीं। और शायद; रत्ना के मन में अब भी है कि आकर सब कुछ सच सच बता दे, कासेगी र मुंह पर थप्पड़-सा मारे कि चोर जगन्नाथ नहीं है, रत्ना है !

माला टकटकी बांधे बच्चे की ओर देख रही है—फिर नहीं पहुंच सका है, जहां था। थाने में न जाने क्या हाल होगा जगन्नाथ का !···हो सकता है कि वह पुलिस के सामने साफ-साफ कह दे और फिर इस चक्कर में जगन्नाथ के साथ ही माला भी लिपट जाए !···हे विठोबा ! बचाना माला को !···

"धक्का, पुड़िया तुझे उसे दी थी।" रत्ना पर नहीं रहा गया। उसके स्वर में घृणा और आवेश था।

माला ने उसकी ओर भी प्रार्थना के भाव से देखा, जैसे कहा हो - 'भगवान के लिए चुप हो जा !'

"तू तो कहती थी कि तुझे उससे प्यार है तूने उस समय क्यों नहीं कहा, जब वह पिट रहा था ! तू धोखेबाज है ! " रत्ना कांपा। पहली बार इतना सख्त बोली। तय कर चुकी है कि हमेशा सच्ची हो जायेगी - भ माला !·· कितना भला था जगन्नाथ ! उसी के लिए सब कुछ कर रहा था और माला ने उसे धोखा दिया। उसे पिटवाया···कितना लहू बह रहा था उसके मुंह से···

और माला चुप। रिक्त आंखों से बक्स की ओर देखे जा रही है। सूझ-समझ सब गायब। बिलकुल पत्थर की शिला।

"तू नीच है, धक्का !···तू गन्दी है ! तूने उसे धोखा दिया !" रत्ना बड़बड़ाई।

माला चुप है। सब स्वीकार रही है···जीवन-भर स्वीकारती रहेगी।

किन्तु जगन्नाथ ने थाने में कुछ भी नहीं स्वीकारा। अप्पाजी और रज लौटकर बता रहे थे कि कमाल का चोर है। उन्हीं के सामने दरोगा और सिपाहियों ने बहुत पिटाई की, पर वह किसी बार कुछ नहीं बोला। अधमरा हो गया है, पर चुप ! · बार-बार सिर्फ यही कह देता चोर हूं। मुझे सजा दो ! मुझे मार डालो। बस। ने कुछ भी नहीं कहा। वह माला से प्यार करता था और

बेशर्म भी कितनी है माला कि रत्ना की हर बात चुपचाप पी जाती है। निरुत्तर रहती है और हर बार यही बताती रहती है कि वह बिलकुल कावेरी है। कावेरी का प्रतिरूप !···कांचघर में रहनेवाली औरत ! कपड़े होते हुए भी नग्न !

और माला भी यह जानती है कि वह नग्न है। न जानती होती तो रत्ना की गालियां इस तरह न सहती जाती। अब वह आदी होने लगी है···वह भी सख्त हो गई है। जो बीत चुका है, उसे रोने से फायदा। घाव है, घाव में पीप भी है, पीप से कसक भी उठती है। पर माला सब कुछ सह लेती है। यहां-वहां मन लगाने की कोशिश करती है। कभी श्यामाबाई के संस्मरणों में खोई रहना चाहती है, कभी कावेरी की समझायशों में, कभी रिहर्सल के साजों में। वह अपने-आपसे दूर रहती है। अपने एकांत से उसे भय लगता है। रत्ना से कटाव उसे भाता है···

उस हर चीज से कटाव उसे अच्छा लगता है, जो जगन्नाथ से दूर करे···बहुत दूर ले जाए ! उसके हर स्मरण से दूर।···वह उन बुदबुदाहटों से भी डरती है जिन्हें कभी जगन्नाथ के साथ बीते एकांत क्षणों में उसने सुना है। जगन्नाथ के प्यार और विश्वास की बुदबुदाहटें··· संवाद···

माला शोर ढूंढ़ती। बहुत शोर। यह शोर उन बुदबुदाहटों और संवादों को दबा देगा।···

और फिर वह शोर मिल गया था माला को। बहुत शोर !···आहें, कराहें, वाह-वाह।···

मुलताई। गुलाबबाई के संच के ठीक सामने कावेरीबाई के संच का भव्य पंडाल लगा। प्रोग्राम की पब्लिसिटी खूब हो चुकी थी। एक दिन पहले से ही टिकट बिक गए थे। हाउस फुल। एक दिन का नहीं, तीन दिन का हाउस फुल।···

गुलाबबाई के संच पर पहले ही दिन कौए उड़ गए। कावेरी ने माला के समूचे मेकअप पर एक तेज नजर दौड़ाई थी और माला के पैरों में घुंघरू

ो झुक जाता। मरम और सीता !···
ाना में ही उसने सच्ची पैदा की थी। प्यार के बारे दिए थे और
न दिखाया था और जब बरसे में जगन्नाथ ने विश्वास दिया तो
मे उसे ठोकर मारकर तार-तार कर डाला !···समय में माला—
र-दंग कावेरी का खून है। तमाशे की औरत का खून ! अपने के
रीर भुनाने की परम्परा का रक्त···
जगन्नाथ कहता था, "बस तू मेरे साथ रहना। तू हमेशा मुझसे
रह खुशी रहना और फिर देख !···मैं बड़े से बड़ा पहाड़ किस तरह
गा। बिलकुल उसी तरह जिस तरह फरहाद ने शीरीं के लिए···"
"झूठ !···तू क्या पहाड़ तोड़ेगा !" माला उसके सीने से चिपक
इठलाकर।
। जाने कितनी बार यही हुआ था। हर बार जगन्नाथ उसे विश्वास
। था और विश्वास मांगता था और हर बार माला उसके जिस्म से
लगाकर बात उड़ा देती थी।
ाय कहता था वह। सचमुच पहाड़ काट दिया था उसने। माला के
र गिरता पहाड़ !···बीच में जगन्नाथ खड़ा हो गया और सारी चोट
सिर पर ले ली—लहूलुहान होकर। चोरी, चरित्रहीनता, मार और
!···सब माला के लिए। सब माला की खातिर।
और माला घुंघरू बांध रही है पैर में। मंच सजा रही है। साजों
थिरक रही है। मुस्कराती है, नजर मारती है···वाहवाहियां लेती
गाहों का कोहरा झेलती है। शबनमी टिप्पणियां···मस्त है माला !
कावेरी कहती है कि आंख की लाज कोई माला से सीखे। हर पलक
ही आबरू है, जो किसी घर-गृहस्थी की औरत पर होती है। शरीर
प। गंगा-जल जैसा।
माला भी सुनती है, रत्ना भी। एक के मन में जगन्नाथ की तकलीफ-
कराह उभरती है और आंतों को चीर जाती है और दूसरी के मन में
। और [illegible] लगता है। आंतें, सीना, गला सब कुछ

डाल दिए थे—"उतर आ मंच में ! देखती हूं, कैसे मेरी बात गई !…
कहां जिएगी गुलाब की फुलझड़ी !"

माला—रत्ना की बड़ी बहिन—उतर गई थी समारोह में। ठुमक-ठुमक…
न…न…

पहले गीत पर ही पंडाल में 'हाय' उछल गई…जीयो कावेरीबाई !…
माला हंसिनी !…ऊई रे !…हुईश्श हुईश्श…! दूधिया रोशनी और
उसके बीच सचमुच हंसिनी-सी एक छोर से दूसरे छोर तक तिरती जाती
माला…फूलगुंथी वेणी…अंगिया पर दो चमकते सितारे। खास तौर से
इसी प्रोग्राम के लिए बनवाई गई थी यह अंगिया। स्तनों की जगह पर
जरी के कामवाले दो सितारे जड़े हुए थे। माला के शरीर पर टंकी
अंगिया के ये सितारे रोशनी में बिजलियों की तरह कौंधते…

रसभरी लावणी—

अंगी तारुण्याचा बहर
ज्वानीच्या कहर
मारिते लहर
मदन तलवार-अ-अ-अ…[1]

"हाय ! हाय !…मार दिया रे !…ओ चमकी !" एक आवाज।

एक और गीत।…फिर गीत ही गीत…बीच में अण्णाजी और
विमन स्टेज पर आए थे। और शोर हो गया…

"अरे, भगाओ इन कौओं को !…"

"जाओ !…काला मुंह करो। हमें माला चाहिए !…सिर्फ
माला…"

अण्णाजी कुछ कहना चाहता था, तभी स्टेज पर
आ गिरी…फिर शोर !

"अच्छा-अच्छा! …'।

सिर्फ माला ! सिर्फ हंसिनी ! सिर्फ

उम्र !…और सिर्फ माला की मादक

---

1. *लावणी—अंगों में तरुणाई की रवानी,*
भरी जवानी—जैसे कामदेव की तलवार।

गहरा और गहरा होता जाता है...उत्साही चेहरा, आरोष में फंसा दयाई चेहरा,' वह समझा।

रत्ना माला को क्रोध से घूरने लगी थी—बेशर्म!...न जाने क्यों रत्ना को लगा कि माला का सीना उघड़ा हुआ है, जांघें नंगी हैं—पूरी नंगी है माला। और अपने-आप से बेखबर। दूसरों को अन्धा समझती हुई। मुड़कर बोली, "स्टेज पर उतरते वक्त डर नहीं लगता तुझे!"

"वही तो पूछ रही हू, तुझसे। कैसा डर! किस बात का डर!" माला मेकअप धो रही थी! तीखी भौंहों के किनारे...गालों पर गुलाबी रंग की चिकनी परतें...

"सारे पंडाल के लोग तुझे देखते हैं। तुझे देखकर करते हैं हुर्रश... हुर्रश · कैसा लगता है तुझे!"

"अच्छा लगता है। बहुत अच्छा!" माला ने ढीठता से कहा।

कुढ़ गई रत्ना। बोली, "अच्छा, समझ, उनमें से कोई तुझे रात को पकड़ ही ले·· तू भीड़ में आख मारती है ना!...आज मैं देख रही थी, तूने उस पीले कुरतेवाले को बहुत बार आख मारी!"

माला खिलखिलाकर हस पड़ी। बोली, "पगली है तू! आख मारने से अपना क्या जाता है! उस कुरतेवाले को देख रही थी न तू! जैसे-जैसे मैं आख मारती थी, उसके दस-दस के नोट स्टेज पर आ जाते थे।"

रत्ना को लगा कि माला ने उसके चेहरे पर थूक दिया है। रत्ना ही मूर्ख और निर्लज्ज है जो माला से यह सब पूछ रही है। वह चुप हो गई थी। मेकअप धोकर माला आराम से बिस्तरे पर जा लेटी थी...बरसों पुराना एक चित्र रत्ना के सामने उभर आया था। उस दिन इसी तरह कावेरी भी बिस्तरे पर आ लेटी थी...दोनों पैर जाघों के पास से 'वी' का निशान बनाते हुए। गनीमत है कि माला ने कावेरी की तरह अब तक पीना

'रत्ना, नाना-बजाना आर्ट है। पहले मैं भी मूर्ख थी और तेरी ही तरह सोचती थी, पर वक्त सब समझा देता है। हमारा इसके सिवा कोई नहीं है कि हम हैं और यह नाचना है...पडाल है। तमाशा है, मंच है। माला बड़बड़ाने लगी थी।

और निर्मोह-से ताकते रहे थे···यह कि लोग विमल और अम्मणाजी की मसखरी से ज्यादा माला के नाच में क्यों मजा लेते हैं और क्यों माला पर आहें फिकती हैं···

बरसों पहले देखा कावेरी के तम्बू का वह दृश्य अचानक अर्थयुक्त हो उठा था, जब उसके मचान से कावेरी और शंकरराव को धरती पर गिरते देखा था—नग्न !···विद्रूप !···

आज भी वे नग्न और विद्रूप की ही तरह आँखों के सामने हैं, पर अन्तर है सिर्फ यह कि रत्ना समझ पा रही है उसका अर्थ।

संडास के एकान्त में माला और जगन्नाथ का एक-दूसरे को भींचना और चिपके हुए होंठ···यह सब देखकर कैसी गुदगुदी उठी थी रत्ना के शरीर में ? आज भी स्मरण कर वही गुदगुदी उठ आती है···पर उस पुरानी गुदगुदी और आज की गुदगुदी में कितना फर्क है ! यह गुदगुदी पहचान सकती है रत्ना। उसका मूल जानती है वह, और उस गुदगुदी से अनजान थी। बड़ी रहस्यमय लगती थी उसे। अर्थहीन !···

अब कुछ भी अर्थहीन नहीं रह गया है !···और इस अर्थहीन न होने ने ही रत्ना के भीतर बैठी उस अप्रसन्नता को अचानक विद्रोह का रूप दे दिया है···मंच के प्रति विद्रोह ! कावेरी के प्रति विद्रोह ! कांचघर के प्रति विद्रोह !···

कभी-कभी जी होता है कि माला को दुत्कारे—क्या है यह सब ! क्या इसी जिन्दगी को पाने के लिए उसने जगन्नाथ को धोखा दिया था !···और यदि वह नहीं चाहती थी तो फिर जगन्नाथ को क्यों दिया धोखा ?···

एक दिन तमाशा खत्म होते ही वह माला के पास आकर पूछने लगी थी, "तुझे डर नहीं लगता !"

"कैसा डर !" अब माला की आवाज खुलने लगी है। गुमने लगा है जगन्नाथ का स्मरण। कानों में सिर्फ पंडाल का शोर है···दृष्टि में हजारों नशीली आँखें···और उन सबके नीचे मिट्टी में दब गया है जगन्नाथ ! उसका स्वर, उसकी रिक्त दृष्टि, वह समूचा !

इसके विपरीत सोचती है रत्ना। उसके सामने जगन्नाथ का चेहरा

हरा और गहरा होता जाता है···उत्साही चेहरा, मारोप में फंसा दयार्द्र हरा,···वह समूचा।

रत्ना माला को क्रोध से घूरने लगी थी—बेशर्म!···न जाने क्यों रत्ना को लगा कि माला का सीना उघड़ा हुआ है, जांघें नंगी हैं—पूरी नंगी है माला। और अपने-आप से बेखबर। दूसरों को अन्धा समझती हुई। गुर्राकर बोली, "स्टेज पर उतरते वक्त डर नहीं लगता तुझे!"

"वही तो पूछ रही हूं, तुझसे। कैसा डर! किस बात का डर!" माला मेकअप धो रही थी! तीखी भौंहों के किनारे···गालों पर गुलाबी रंग की चिकनी परतें···

"सारे पंडाल के लोग तुझे देखते हैं। तुझे देखकर करते हैं हुर्दंग··· हुर्दंग···कैसा लगता है तुझे!"

"अच्छा लगता है। बहुत अच्छा!" माला ने ढीठता से कहा।

कुढ़ गई रत्ना। बोली, "अच्छा, समझ, उनमें से कोई तुझे रात को पकड़ ही ले···तू भीड़ में आंख मारती है ना!···आज मैं देख रही थी, तूने उस पीले कुरतेवाले को बहुत बार आंख मारी!"

माला खिलखिलाकर हंस पड़ी। बोली, "पगली है तू! आंख मारने से अपना क्या जाता है! उस कुरतेवाले को देख रही थी न तू! जैसे-जैसे मैं आंख मारती थी, उसके दस-दस के नोट स्टेज पर आ जाते थे।"

रत्ना को लगा कि माला ने उसके चेहरे पर थूक दिया है। रत्ना ही मूर्ख और निर्लज्ज है जो माला से यह सब पूछ रही है। वह चुप हो गई थी। मेकअप धोकर माला आराम से बिस्तरे पर जा लेटी थी···बरसों पुराना एक चित्र रत्ना के सामने उभर आया था। उस दिन इसी तरह कावेरी भी बिस्तरे पर आ लेटी थी···दोनों पैर जांघों के पास से 'वी' का निशान बनाते हुए। मनोरम है कि माला ने कावेरी की तरह अब तक पीना···

"रत्ना, गाना-बजाना आर्ट है। पहले मैं भी मूर्ख थी और तेरी ही तरह सोचती थी, पर वक्त सब समझा देता है। हमारा इसके सिवा कोई नहीं है कि हम हैं और यह भावना है···पंडाल है। तमाशा है, सच है।" माला बड़बड़ाने लगी थी।

कावेरीबाई इस तरह आ-जा रही थी जैसे किसी समारोह की तैयारी कर रही हो। गजरा देकर वह जा चुकी थी।

"कहीं जा रही है, अक्का!" रत्ना ने पूछा।

"कैसी लगती हूं!" वह बोली।

"अच्छी।···पर जा कहां रही है!"

"ज़रा लांग तो देख पीछे, ठीक है ना!" माला मुड़ी और आदमकद शीशे को लांग का पिछवाड़ा देकर खड़ी हो गई। गरदन अकड़ाकर शीशे में लांग का कसाव देखा। रत्ना भी देख चुकी है। कहा, "ठीक है। पर···"

"ज़रा पीछे की गांठ तो देख!···" माला उसकी ओर पीठ फिराकर खड़ी हो गई।

रत्ना को उसका व्यवहार विचित्र लगा। पर क्या किया जा सकता है। उसने अंगिया की गांठ देखी—ठीक तरह लगी थी। कहा, "ठीक है।"

"अच्छा।" माला फिर से शीशे के सामने बैठकर चेहरा देखने लगी। अपने-आपपर मुग्ध होती हुई।

"किधर का प्रोग्राम है?" रत्ना ने पूछा।

"एक प्रोग्राम है।" माला ने उत्तर दिया।

"फिर भी मालूम तो हो।"

"अभी मालूम हो जाएगा।" माला बोली।

रत्ना चुप। ठीक तरह उत्तर ही नहीं दे रही है। बड़े नखरे हैं माला के। रत्ना ने बात करना ठीक नहीं समझा। जानेवाली थी कि कावेरीबाई भीतर आ गई। निडाल सौन्दर्य का कठोर चेहरा। बहुत जल्दी में थी शायद, "तुझे तैयार होने में और कितनी देर है?"

"कुछ भी तो नहीं।"

"तो चल।"

कावेरीबाई चली। पीछे-पीछे माला। रत्ना उनके साथ हो ली। किधर जा रही हैं ये?

बाहर आकर कावेरीबाई ने बगलवाले कमरे की ओर इशारा कर दिया। माला भीतर चली गई। रत्ना ने कुछ नहीं पूछा। किसीने नहीं

छूपना है। झूठ है और बहुत गलत है—उसने समझ लिया था।

कमरे में था सेंटी। देर तक नींद नहीं आ सकी थी उसे। कावेरीबाई धारणीवाला, पेटीवाला, तबलावाला, अण्णाजी, विमलराव···सब सोच चुके थे। रोशनी नहीं थी···रोशन था सिर्फ वह कमरा, जिसमें माला समा गई थी। कमरा, जिसमें कमिश्नर को खाना दिया गया था···कमरा, जो ईंट-गारों का होते हुए भी रत्ना को लग रहा था कि कांच का है।

सन्नाटा कपड़े के एक लम्बे थान की तरह बिछा हुआ था···इसके बाव-जूद रत्ना को लगा कि एक शोर उसके आसपास घिरा हुआ है। स्टेज पर माला की जगह स्वयं वह खड़ी हुई है। आवाजें और फब्तियां हाथ बनकर उठती हैं और उसके कपड़े नोचने लगती हैं···साड़ी···ब्लाउज···सब चिथड़े-चिथड़े होकर बिखर गए हैं। स्टेज पांच-पांच और दस-दस के नोटों से भरा हुआ है···उड़ते हुए नोट रत्ना के जिस्म पर चिपकने लगते हैं···

ऐसा धार्ट नहीं चाहिए। रत्ना नहीं करेगी यह सब। एक मेकअप के बाद दूसरा···एक तमाशे के बाद दूसरा···कभी नहीं।

सुबह उसीसे कहा गया था कि माला को जगा लाए। पास के कमरे से।

तो क्या माला रात-भर उस कमरे से नहीं लौटी ? इसका मतलब तो यही है। वह सोचने लगी थी।

माला के कमरे में पहुंची। जो देखा, उसे पचाना कठिन था। माला नीचे पड़ी थी—फर्श पर। अंगिया पलंग पर। तकिये पर लिपस्टिक पुंछा हुआ। हल्का मेकअप अब माला के चेहरे पर एक पप्पड़ की तरह लग रहा था। चेहरा मुंदा हुआ। जब रत्ना ने उसे झकझोरकर जगाया, तब भी

···थी···दारू की बदबू !···इसका मतलब है

···भी पी थी। नथुने सिकोड़ते हुए रत्ना ने सोचा,

···हुई खाली बोतल देखी—कोई महंगी दारू रही

माला जागी ही न थी। हर बार करवट बदल जाती। रत्ना ने झुँझलाकर एक ज़ोरदार झटका दे दिया था उसे, "उठ!..."

"क्या है?" वह जागी।

रत्ना को उसका चेहरा एक अजनबी-सा लगा। कहानियों की पुतली। रात की सारी कहानी माला के चेहरे पर काली स्याही से पुती जा रही है। रत्ना ने उसे घृणा से देखा। यही है माला...क्या सच में यही है?...

माला उठी थी। लड़खड़ाती हुई। आँखें मींचती। उसने अंगिया पहनी थी, फिर ब्लाउज इस तरह ऊपर से डाल लिया था जैसे किसी पर रात डाली हो।...हां, कुछ ऐसा ही महसूस किया था रत्ना ने। वह चुपचाप उसे देखती रही थी।

"क्या देख रही है?" उसने पूछा।

"देख रही हूं कि तू और कितनी नीचे तक जाएगी?" रत्ना बिलकुल उसी स्वर, उसी भाव में बोली, जिसमें बहुत पहले माला बोला करती थी।

"कितनी नीचे गई हूं?" उसने पूछा।

"पाताल तक।" रत्ना ने गुर्राकर कहा।

"पाताल देखा है किसीने?" माला हंसी।

"देखा नहीं है, पर देख रही हूं।"

माला और ज़ोर से हंसने लगी। बोली, "ठीक है। मैं तेरा आकाश देखूंगी। है ना?"

रत्ना ने उत्तर नहीं दिया।

माला अचानक गंभीर हो गई थी। चेहरा और पिटा हुआ लगने लगा था, "पातालवालों को सिर्फ पाताल देखना चाहिए। आकाश देखने लायक न तो उनकी आंखें होती हैं, न उनका भाग्य। समझी?"

रत्ना विस्मय से उसका चेहरा देखती रह गई। बेशर्म माला की आवाज़ में इतनी पीड़ा कहां से आई, जो उसके शब्दों से लिपटी हुई है?

माला के स्वर में सचमुच पीड़ा थी। जैसे रात को किसी दूर, अंधेरे, अनजान रास्ते पर मीलों चलती रही हो और हांफती रही हो। बोली थी, "रत्ना, शुरू में सब तेरी ही तरह सोचते हैं। सबकी नज़रें आकाश

का-५

ना चाहती हैं। सब तारे पकड़ लेना चाहते हैं मुट्ठी में, पर धूलवाले ाथों की क्या मजाल कि तारे पकड़ सकें!"

रत्ना चुप ही रही। हथेलियों में सुरसुरी अनुभव की उसने। शायद ल लिपटी हुई है उनमें। रत्ना नहीं जानती, पर माला जानती है।

"धीरे-धीरे तू भी सब समझ जाएगी!...आकाश, पाताल, धरती... ब!" माला के शब्द बहुत नम हो गए थे। वह उठी और बाथरूम में ली गई।

और रत्ना चुपचाप खड़ी रही। रिक्त दृष्टि से कभी-कभी दारू की महंगी ोतल की ओर देखती रही। खाली बोतल!...लुटी हुई। माला जैसी। किये पर लिपस्टिक के धब्बे। चादरे पर सिकुड़नें। लगता है, आकाश-ाताल, धूल और रोशनी...सब गड्डमड्ड होने लगे हैं। इस हद तक हो चुके कि रत्ना उनमें फर्क नहीं कर सकती। कौनसा है आकाश?...और कौन-ा है पाताल?...कहां है धरती...

और फिर आया पहचान का दिन। आकाश, पाताल और धरती में ाद कर पाने का दिन। कावेरी ने रत्ना को बुलाया। बड़े स्नेह से पास बेठाया। कहा "कल से तेरा रियाज शुरू होगा।"

"कैसा रियाज?"

"अरे पगली, हुनरमन्दी का रियाज। अब क्या यों ही बहकती-घूमती ़हेगी। बहुत घूम ली है। बचपन गया।"

रत्ना समझ गई। माला का सम्वाद कानों में एक गूंज की तरह घूम ाया—'धीरे-धीरे तू भी सब समझ जाएगी। आकाश, पाताल, धरती —सब...'

"कल उस्तादजी आएंगे। रोज सुबह-सवेरे तेरा रियाज चला करेगा। दादा, मैं, अम्मा सब बैठेंगे! तुम्हारे ऊपर सबने आशा लगा रखी है, मेरी बच्ची!" कावेरी ने उसे गोद में भर लिया था। यह अचानक उमड़ा प्यार रत्ना को अनहोना-सा लगा। पर बोली नहीं कुछ। निश्चय कर चुकी है कि बोलेगी जरूर, पर उसी समय बोलेगी जब बोलने की जरूरत होगी।

मगर हर बार यही सोचती रह गई थी वह। किसी बार भी नहीं बोल सकी थी। कावेरी, माला, अप्पाजी सब उसे अपनी-अपनी तरह मोड़ते रहे थे और रत्ना मुड़ती गई। सारा विरोध मन में ही घुटता रह जाता था। क्या वह भी माला की ही तरह चुपचाप समर्पण कर बैठेगी ?"

नहीं!

तब विरोध क्यों नहीं करती है रत्ना ?...क्यों नहीं माला और कावेरी को फटकार देती है कि इस तरह नहीं होगा। उसी तरह होगा जिस तरह रत्ना चाहेगी!...उतना ही जितना रत्ना करेगी!... तुम्हारे चाहे पिण्डली दुखे, कमर दबे, सीना उछले...यह सब कभी नहीं होगा। चूंकि रत्ना नहीं चाहती!

पर किसी बार उसने नहीं कहा। हर बार कावेरी के सामने उसकी हर कठोरता रुई के फाहे की तरह दब जाया करती। अपने-आपको बहलाने का ढोंग बनी हुई रत्ना!

कभी-कभी एकांत में सोचती—क्या हो जाता है उसे ? कितना कुछ सोचकर रियाज़ में पहुंचती है कि आज कह देगी। आज गरज पड़ेगी आज सुना देगी सबको कि रत्ना जिस तरह नाचना चाहेगी, उसी तरह नाचेगी!...पर सब व्यर्थ हो जाता है।

भीतर से कोई उत्तर फेंक देता, "वह अकेली है। रत्ना अकेली है। उसके पास कोई जगन्नाथ नहीं। जगन्नाथ जैसा नहीं..."

किन्तु लगता कि यह उत्तर काफी नहीं है। असल में रत्ना ही कमज़ोर है...माचिस की तीली। मोम की रत्ना। जो जिस तरह जलाना चाहता है, जला लेता है और फर्र से जल जाती है रत्ना।

ऐसा कितना कुछ था, जिसे रत्ना नहीं होने देना चाहती थी, पर कावेरी उसकी माँ थी, माला बहिन। रत्ना को भी कुछ ही दिनों बाद स्टेज पर उतर जाना पड़ा। उसी तरह *जिस तरह उन्होंने उतारना* चाहा।

वह उतरी।

पहले ही दिन कावेरी और माला ने सलाह दी, "*तुम्हे अपना बदन* कुछ और तोड़ना चाहिए।"

"किस तरह ?"

"इस तरह !" माला ने कमर हिलाकर बताई। इसे बेहयाई में रत्ना अपने लिए उपहास का भाव ही अनुभव किया, लेकिन वह देखती ही रह ई। इससे इन्कार नहीं किया जा सकता था कि माला की कमर में बला लोच था। पंजों से गरदन तक मानो एक डोर आवारगी के साथ हवा झूल रही हो !···

"मुझसे नहीं जमता।"

"जमेगा कैसे नहीं ? कोशिश कर, सब जम जाएगा।"

रत्ना ने दूसरे दिन कोशिश की। तीसरे और चौथे दिन भी···फिर सब जम गया। कमर, मंगुली, सीना, मुसकराहटें और पलकें—सब। और शायद माला से पचास गुना ज्यादा। कावेरीबाई के मंच पर टिकट बढ़ गया। एक का डेढ़, ढाई का तीन, पांच का दस !

जमा सब कुछ, पर रत्ना उखड़ गई ! उसे ऐसी जिन्दगी नहीं चाहिए थी। वह थिरकते कदमों व मुसकराहटों के बीच पंडाल में कुछ ढूंढने गी - है कोई, जो उसे अपने घर में ले जाए ?···यह हुईदश-हुईदश, यह हना, वाहवाही, छींटे—कुछ नहीं चाहिए था। चाहिए था एक आदेश-र्ण स्वर—

हाय रत्ना ? ··ओय रत्ना !···मार दिया रे हसिनी !···यह सब ही। एक सपना बुने बैठी थी वह। पाताल में रहकर आकाश का सपना। हाल का नहीं, घर का सपना। पेटी-तबले की आवाज़ों का नहीं, बरतनों ा। कोई भी हो, भलामानस हो। पंडाल में बैठे इन हजार चेहरों में से ोई एक···सिर्फ एक···

कोई एक चेहरा !···

कोई एक जगन्नाथ !

देखनेवालों को देखते-देखते थकने लगी वह। कोई नहीं आया। बहुत ान तक कोई नहीं आया। शायद कोई आएगा भी नहीं···कौन रेगा पाताल में ? 'तमाशा' में मुसकराहटें बेचनेवाली के पास क्यों

आएगा कोई भलामानस? लोगों के लिए नाचते-नाचते थक जाती है वह···अपने लिए कुछ खोजते-खोजते उससे भी कई गुना ज्यादा···

टूटने लगी रत्ना। मुरझाने-सी लगी। तब एक दिन माला ने उसे कुरेदा था, "किस बात की फिक्र करती है तू!"

"कुछ नहीं।"

"कुछ तो?"

"कुछ खास नहीं।" एक गहरी सांस ली थी रत्ना ने।

"जो खास नहीं है, वह क्या है। मुझे बता।" माला का सवाल।

"इस मंच में काम करना मुझसे नहीं जम रहा है।"

"मंच मे काम करना नही जम रहा है!" माला हंस पड़ी, "तो क्या तू भी मेरी ही तरह पगली हुई है! लगन करेगी!···ऍ!···"

रत्ना जवाब न दे सकी।

"तुझे दड़बा चाहिए! सच की हंसिनी को मौत चाहिए!"

रत्ना चुप। माला शादी को दड़बा समझने लगी है!···समझती रहे! रत्ना को तो इस मंच में वेश्यापन ही नज़र आता है।

'ज़रूर तू शादी ही करना चाहती है।···क्यों? पर वेड़ी है तू! बिलकुल पगल! तमाशे की औरत घर की औरत नहीं होती है। होती तो अब तक कावेरी भी किसी घर में होती—हमारी आई! जरा अक्कल से काम लिया कर।" माला ने उसे डपटा।

"औरत-औरत सब एक बरोब्बर!" रत्ना ने उत्तर दिया।

"नहीं। घर की औरत अलग, तमाशे की अलग! पीने का पानी और नहाने का पानी एक बरोब्बर होता है क्या! नहाने का पानी सिर्फ नहाने की खातिर होता है। आधी बाल्टी से यह आदमी नहाएगा, आधी से वह। आखिर में खलास हो जाएगा। तमाशेवाली औरत की जिन्दगी यही होती है। "कहते-कहते माला की आवाज कांप गई। पल-दो पल वह चुप रही फिर अचानक पगली की तरह ठठाकर हंस पड़ी, "यह बेवकूफी का ख्याल छोड़ दे!"

लगा था कि ठीक ही कहती है माला, पर रत्ना अपने कल्पना-महल से बाहर न आ सकी। शायद इसलिए न आ सकी कि माला नहीं चाहती

थी। झन्‌न्‌न्‌…मुसकराहटें…घुंघरू…झपकती पलकें…

और इस सबके बीच खोज…इतने-इतने चेहरे नहीं…चाहिए !…बस एक, कोई एक…

माला ने खबर कावेरी तक पहुंचा दी थी, "रत्ना कहती है कि लग्न करेगी। घर-गिरस्तीवालों की तरह लग्न करेगी !…शादी ! वह संचशाली जिन्दगी उसे जमती नहीं है। कहती है कि बिलकुल नहीं जमती।"

कावेरी ने ठोढ़ी पर हथेली रख ली—गहन सोच।

माला उसका चेहरा देख रही थी। बता देना जरूरी था। लगता ा कि बिलकुल उसीकी तरह पागल बन रही है रत्ना—किसी दिन व्यर्थ ी सोने-सा जिस्म किसी छलावे को सौंप देगी। अपने-आप पैदा किए गए लावे को। ठीक उसी तरह जिस तरह माला ने जगन्नाथ को सौंपा था।

पर जगन्नाथ से प्यार करती थी माला, वह भी करता था।

अपने-आपपर हंसती है माला। प्यार ?…पाताल के लोग और ाकाश का छल !…इसी छल मे तन मुफ्त बांट दिया था माला ने गन्नाथ को। मूर्ख थी माला।…इसके दाम वसूलने चाहिए। वसूल ही है।…

और अब वैसा ही कोई छल अपने गिर्द बुन रही है रत्ना। बच्ची ! सी दिन किसीको यों ही बिना कीमत…माला नहीं चाहती है यह। सीलिए कावेरी तक खबर पहुंचा दी है।

"…तो रत्ना लग्न करेगी। क्यों ?"

"हां।" माला मुसकराई। उपेक्षा से।

"लग्न हर औरत का होना चाहिए। हर औरत करती है।" कावेरीई की भुरियां गहरा गई थीं, "तेरा भी होना चाहिए, रत्ना का भी ना चाहिए। इसमें मुझे क्या विरोध हो सकता है ?"

"पर…" माला ने आश्चर्य से उसका चेहरा देखा। यह क्या कह ी है कावेरी !

"हां, सबका लग्न होना चाहिए।" वह पुनः बोली।

"पर रत्ना अलग किस्म का लग्न चाहती है। संचवाला नहीं।"

"फिर कैसा ?"

"उसे अच्छी औरत की तरह लगन चाहिए। किसीका घर बसाने का लगन। इस तरह देश-देश घूमनेवाला संच का लगन वह नहीं चाहती। यह डान्स-वान्स भी बन्द!"

"आई-ग्'''।" कावेरीबाई चौंककर हंसी, "संच की औरत होकर इस माफिक सोचती है रत्ना? पगली! लगन हमने भी किया था। पर हम दड़बे में बन्द नहीं हुए। अपना पैदा किया। यह संच चलाकर तुम लोगों को पाला। आदमी को लेकर घर में बन्द हो जाने का लगन अलग होता है, संच के साथ आदमी को रखने का लगन अलग। रत्ना जरूर लगन करेगी, पर संचवाला!"

"पर वह'''" माला का स्वर शिकायत का भी नहीं है, सिफारिश का भी नहीं, पर जाने क्या समझी थी कावेरी'''

"पर-वर कुछ नहीं!" उसने माला को डांट दिया था।

महीने-दर-महीने। साल होने लगा। रत्ना ऊहापोह में संच की जिन्दगी जिए जा रही थी'''विश्वास नहीं होता था माला के दर्शन पर कि नहाने का पानी अलग, पीने का पानी अलग—पानी दोनों, पर कितने अलग!

ऐसा नहीं है। रत्ना सोचती। पानी-पानी एक जैसे। औरत-औरत एक जैसी।

कोई एक जगन्नाथ!'''रत्ना की नजरें अब भी ढूंढ़ रही थीं कि तभी मुकुन्दराव पहली बार तमाशा देखने आया—मुलताई में। कुछ दिनों के लिए किसी काम से आया था वह। कावेरीबाई की पार्टी की दूर-दूर तक तारीफ सुन रखी थी। पहुंच गया देखने। पहले दिन, दूसरे दिन और फिर तीसरे दिन भी। इतने दिन कोई लगातार पहुंचे और अगली कतार के टिकट पर बैठे तो तमाशेवाली औरत को उसे पहचान लेना पड़ता है। मुकुन्दराव पांच-पांच के नोट भी तो फेंकता था! दो दिनों मे ही पहचान लिया गया।

चौथे दिन रत्ना ने स्टेज पर कदम रखते ही देखा कि मुकुन्दराव

ठीक सामने बैठा हुआ है। सफेद झकाझक खादी की धोती, कुरता, टोपी—जैसे कोई बड़ा नेता! वह मुसकराया। रत्ना भी मुसकरा दी। अभी फेंकेगा पांच-पांच के नोट! सारे पंडाल में एक वही तो चमक रहा था। रोज वह धुले कपड़े पहनता था, दाढ़ी बनवाता और जब तक रत्ना स्टेज पर रहती उसे एकटक देखता रहता···

जब रत्ना का नाम लेकर नीलकंठ सारंगीवाले ने कावेरीबाई के हाथ में पांच-पांच के तीन नोट थमाए तो कावेरीबाई ने रत्ना को चेतावनी दी, "तू उसका खास खयाल रखा कर!"

"किसका?" घुंघरू खोलती हुई रत्ना ने सब कुछ जानते हुए भी पूछा।

"उसी पोतवाले का।"

"कौन?"

"वही, सफेद टोपीवाला।"

"बहुत-से लोग सफेद टोपी लगाते हैं, भाई!" रत्ना घुंघरू खोलकर नीलकंठ की ओर फेंक दिए। नीलकंठ ने उछलकर उन्हें झेल लिया। बोला, "उसका नाम मुकुन्दराव है।···यहां से पांच मील दूर एक खेड़े[1] का पटेल है। मोटा मुर्गा है, रत्नाबाई! उसे सम्हाला करो।"

"हां, सम्हालना चाहिए।" कावेरीबाई ने समझाते हुए कहा, "कल से उसका खास खयाल रखा करो। खास तरह देखा करो।"

"कैसे?" रत्ना ने मुसकराकर पूछा, हालांकि वह जानती थी, 'सम्हालने' का अर्थ क्या है और 'खास तरह' कैसे देखा जाता है।

"ज्यादा बना मत रत्ना!" झुंझलाकर कावेरीबाई चली गई थी। नोट मुट्ठी में समेटती हुई।

और मुकुन्दराव को सम्हालने लगी रत्ना। उस तरह नहीं जिस तरह कावेरीबाई चाहती थी। बल्कि उसने मुकुन्द को अपने ढंग से सम्हाला। स्टेज पर उतरते ही वह लगातार मुकुन्दराव को देखी गई। पंडाल में उठनेवाली आहों, फब्तियों और इशारों की परवाह किए बगैर।

फटा टोप लगाए कामेडियन चिमन ने चुटकुला पैदा करने की गरज

---

१. खेड़ा: गांव

से सीने पर हाथ ठोंककर उसके सामने लोटते हुए कहा, "रत्ना रानी ! तेरी खातिर हम सब घर-द्वार छोड़कर आया। सात घरवाली और नौ बच्चा लोक छोड़ा। तीन खेत, दो भाई छोड़ा। एक घर और दो बाप··· नहीं-नहीं, मिस्टेक हो गया (माथा ठोंककर) एक बाप और दो घर छोड़ा···"

"पर चाहिए क्या तुझे ?" रत्ना ने इठलाकर पूछा।

"कुछ नहीं। बस, तुझसे लग्न करने का जी होता है।"

'अरे, परे हट् ! मुझसे लग्न करेगा ? पहले बदन सम्हाल अपना ! कैसा लकड़ी के माफिक लगता है।···हम लग्न करेगा, पर किसी मर्द पट्ठे से करेगा।"

सी···सी···हो-ई-ई···! चिमन झेंपता हुआ हंसता है।

पडाल में सीटियां बरसने लगी हैं। क्या ऊंचा मज़ाक ! बदन कैसा ! *लकड़ी के माफिक ! वाह-वाह ? जीयो-जीयो रत्नाबाई, तुम्हें हमारी* ज़िन्दगी लग जाए।···खूब चोट मारी है साले को ! और रत्ना, बिजली *की कौंध ! ···सिहरती हुई हवा में लिपटी हुई।*

"मुझे एक मर्द पसन्द आया है !"

"कौन ?"

"वह···वह···" रत्ना ने दर्शकों में बैठे मुकुन्दराव की ओर इशारा कर दिया।

"कौन ?···वह फेंटेवाला ?"

"नहीं-नहीं।"

"फिर कौन, वह चश्मेवाला ?"

"नहीं-नहीं।"

"फिर कौन, वह टोपीवाला ?"

"नहीं-नहीं !"

"फिर कौन ?" दर्शकों की ओर मुंह मटकाए हुए चिमन ने माथा ठोंककर पूछा।

"वो-वो-वो···मुकुन्दराव पटेल !" रत्ना ने एक चीख़ की ओर नाम पूरा करते-करते अदा दर्द। सारे पंडाल में फिर से हंगामा बरपा हो गया।

कई टोपियां उछलकर इधर-उधर जा गिरा। मुकुन्दराव ता जस माम बनकर बह गया स्टेज के किनारे-किनारे···वाहवाहियों के बीच रत्ना स्टेज के एक सिरे से दूसरे सिरे तक थिरकती चली गई···छम··· छन्न्न्···

पंडाल में सीने पिट रहे थे···

कुछ टिप्पणियां—

"हम न हुए मुकुन्दराव !···"

"भाई, मज़े मुकुन्दराव के !"

"मज़े ही मज़े !···रत्ना हंसिनी मर गई है उसपर !"

"और रत्ना स्टेज पर तिर रही है। सचमुच हंसिनी। स्टेज के किनारे खड़ी कावेरीबाई विठोबा के नाम स्तुति के दो बोल बोलती है — "सब तेरा किया ! सब तेरी कृपा है! मेरी निभी जा रही है।"

फरमाइशें होने लगी हैं···पाहुणेवाला गीत होने दो !···जल्दी करो, रत्नाबाई ! जान निकली जा रही है।

रत्ना उनकी जान नहीं निकलने देती। पाहुणेवाला गीत पंडाल में बिखेर देती है—

यो-यो रे पाहुणा,
फेंटेवाला पाहुणा,
चश्मेवाला पाहुणा,
बरा दिसतो···[1]

सब अपनी-अपनी टोपियां, फेंटे, चश्मे सम्हाल रहे हैं। किसे बुला रही है रत्ना हंसिनी ?···मोतियों की झालर !···एक मस्तानी हज़ार बाजीराव !···

बघुं न मला खुणावितो यो-यो···[2]

---

१. आो हो रे, मेहमान !
सफेवाले मेहमान,
चश्मेवाले मेहमान,
तू प्यारा लगता है···
२. ऊपर की ओर मुझे झांकता है,

यहां ?"

माला चुप है। सिर्फ आंखों की पुतलियों पर पानी की एक पर्त तैरने लगी है।

"पगला है जगन्नाथ। नहाने के पानी को पीने का पानी समझता है!" रत्ना बोली।

माला का सारा उत्साह स्पंज में गायब हो गए पानी की तरह घुल गया। उठ पड़ी। रत्ना उसे रोकना चाहती थी, पर भीतर से किसी शक्ति ने उसे रोक लिया।

माला जा चुकी थी। रत्ना को लगा कि उसने ठीक नहीं किया है। इस तरह माला को तकलीफ पहुंचाना उसकी भूल थी। वह जगन्नाथ को प्यार करती है···प्यार और माला? रत्ना चाहती है कि दोनों नाम जोड़कर देखे, पर अजीब बात है। हर बार अलग-अलग ही लगते हैं।

वह लेट गई—नींद अब भी नहीं थी आंखों में।···धीरे-धीरे आ ही जाएगी। उसने पलकें मूंद लीं।

सचमुच जगन्नाथ ही था वह। सुबह निश्चित हो गया। सारी पार्टी में बोखलाहट फैली हुई थी। रत्ना तम्बू से बाहर आई तो सबसे पहले बिरज ने बताया, "तुम्हें कुछ मालूम है रत्नाबाई?"

"क्या?"

"जगन्नाथ जेल से छूट आया है।···रात को माला से मिलने भी आया था।"

"अच्छा!" अनचाहे ही रत्ना को आश्चर्य व्यक्त करना पड़ा। न करती तो अस्वाभाविक लगता।···पर यह सोचकर हैरान थी कि माला से धोखा खाने के बावजूद जगन्नाथ उससे मिलने आ पहुंचा। इसका मतलब तो यह हुआ कि पल्ले दरजे का मूर्ख है।

हां, वह मिलने आया था और रात-भर से माला के पास ही है।" बिरज ने बताया।

"रात-भर से माला के पास है? यह क्या कह रहे हो?"

"ठीक कह रहा हूं, रत्नाबाई !" बिरज भोंडे ढंग से हंसा। बोला, "विश्वास न हो तो अपनी आंखों से माला के तम्बू में जाकर देख लो। खाट से लेटा हुआ है पट्ठा !···"

"अच्छा ?" रत्ना विस्मयपूर्वक माला के तम्बू की ओर बढ़ी। पास ही है। देखा कि दो-चार लोग द्वार पर जमा हैं।

"और सुनो, तुम्हें एक बात और बताऊं।"

रत्ना रुक गई। वह बात भी सुन ले।

बिरज ने बताया, "तुम्हें यह मालूम नहीं है शायद कि चोरी जगन्नाथ ने नहीं, अपनी माला ने की थी।···"

"तुझे कैसे मालूम हुआ ?"

बिरज हंसा, "खुद माला ने बताया।"

"कब ?"

"अभी।···सवेरे !"···जब कावेरीबाई ने माला से कहा कि तूने जगन्नाथ को क्यों ठहराया है, तो वह बोली कि जगन्नाथ से प्यार करती है वह।···वह उसीके साथ जिएगी, उसीके साथ मरेगी। इसपर कावेरी बहुत चिल्लाचोट मचाने लगी। मालाबाई ने उसे डांट दिया। कहा कि वह कायदा-कानून सब जानती है। उसकी मरजी के खिलाफ कावेरी उसे रख में नहीं रख सकती।" बिरज हंसा, "भई, मैं तो मान गया माला को ! बड़े कलेजेवाली औरत है। कावेरी बड़ी शेरनी बनी फिरती थी, अब माला के सामने दुबकी खड़ी है—खजैली कुतिया की तरह।"

"क्या बकता है ?" रत्ना चिल्ला पड़ी।

बिरज भी बुलन्द हो गया, "ठीक कहता हूं। अब इस नट का बेड़ा पार हुआ समझो ! इसमें मैनाएं पैदा हो रही हैं। मजनू आ-जा रहे हैं।" वह जोर से हंसा।

रत्ना ने परवाह नहीं की। जल्दी-जल्दी माला के तम्बू की ओर बढ़ गई।

ठीक कहा था बिरज ने। कावेरीबाई एक ओर खड़ी थी—चुप ! पत्थर-सी टकी हुई पुतलियां जगन्नाथ और माला पर। दोनों चारपाई पर बैठे हैं—ओढ़े से। रत्ना को अचरज हुआ कि माला में यह कुव्वत

कहां से ऐसी हो गई है ?

रत्ना का स्वागत किया था जगन्नाथ ने। दोनों हाथ जोड़े। बोला, "राम-राम, रत्ना !··· आओ, बैठो।"

रत्ना ने भी मुस्कराकर उत्तर दिया। दिल में एक उलझन है — कमाल की हिम्मत कर रहा है जगन्नाथ ! बिलकुल इस तरह कह रहा है, जैसे उसका अपना घर हो और रत्ना मेहमान।

कावेरीबाई सह नहीं सकी। माला ने पूछा, "तो तूने सोच लिया है मां कि इसका क्या नतीजा निकलेगा ?"

'हां, सोच लिया है बाई।'' माला का शान्त स्वर।

"ठीक है !" वह पैर पटकती हुई चली गई थी। उसके पीछे-पीछे अण्णाजी, विमल, नीलकंठ···सब।

रत्ना ने आश्चर्य से एक बार पुनः जगन्नाथ और माला को देखा।

"देखती क्या है," माला बोली, 'तू कहती थी ना कि मैंने गलती की थी, वही सुधार रही हूं।"

रत्ना निरुत्तर।

माला हंसी, "अब भी भरोसा नहीं हो रहा है क्या ?"

रत्ना चुप।

"अच्छा, बैठ।" माला ने उसके लिए जगह बना दी। रत्ना बैठ गई। थोड़ी देर कुछ सोचती रही, जैसे, क्या पूछा जाए—यह ढूंढ रही हो, फिर बोली, "यह सब हुआ कैसे ? कुछ बता ना, अक्का !"

माला धरती पर बैठ गई—उकड़ूं। कहा, "मैं तेरे पास से लौटी तो देखा कि यहां यह बैठा हुआ था। मैंने इससे अपने लिए की माफी मांगी···" माला ने एक नशीली भौंह के साथ जगन्नाथ की ओर देखा। वह मुस्करा रहा था। चेहरे पर कोई शिकन-शिकायत नहीं। रत्ना को और अधिक आश्चर्य हुआ। माला ने आगे कहा, "इसने मुझे माफ कर दिया है। यह तो रात को ही वापस जाने के लिए कह रहा था, पर मैंने कहा, *'नहीं ! अब हम-तुम साथ-साथ रहेंगे।'* इसने पूछा, 'कैसे ?' मैंने कहा, 'सवेरे बताऊंगी···' और फिर तू देख ही रही है।"

जगन्नाथ बोला, "पर तूने यह ठीक नहीं किया माला ! मेरे लिए

री मां से झगड़ा···वह तुझे बहुत प्यार करती है। तेरी मां है।"

"ठीक है। हर मां अपने बच्चों को प्यार करती है। वह करती है, में क्या नई बात है?" माला ने सरल-सा उत्तर दिया और जगन्नाथ हो गया।

"तो अब तू संघ छोड़ देगी अवश्य?" रत्ना ने पूछा।

"संघ क्यों छोड़ूंगी?"

"फिर लग्न···" रत्ना आश्चर्यचकित हुई।

"लग्न के लिए तुमसे किसने कहा है?" उसने पूछा।

"पर वह तेरे साथ रहेगा ना···फिर···"

"क्यों, कोई किसीके साथ कोई वैसे ही रह नहीं सकता क्या?" वह हंसी, "साथ रहने के लिए या प्यार करने के लिए लग्न ही क्या जरूरी है?"

रत्ना ने विस्मय से आंखें फैलाकर उसे देखा—पागल तो नहीं हो गई है माला?

माला कह रही थी, "जो लोग लग्न कर लेते हैं और प्यार नहीं करते, वे सही होते हैं और हम गलत माने जाएंगे, क्यों?"

रत्ना की समझ में नहीं आ रहा है कि उससे क्या कहे। चुप रह गई।

माला उठी। जगन्नाथ से बोली, "चल, कुछ काम की चीजें ले आएं। अब मेरे पास पैसे भी रहते हैं। अंगूठियां भी हैं, लाकिट भी है। और सब मेरा है।···"

और रत्ना देखती रह गई। वे दोनों बाहर चले गए!

रत्ना के लिए माला हमेशा ही ऐसी दुरूह रही है, जिसे वह कभी नहीं सुलझा सकी। न जाने कितनी गांठें हैं माला के व्यक्तित्व में! और हर गांठ के न जाने कितने भेद हैं! कभी उसपर क्रोध आता है, कभी तरस, कभी आश्चर्य होता है, कभी घृणा।···

रत्ना देर तक तम्बू में पड़ी-पड़ी सोचती रही थी। एक वह भी

माला ही थी जिसने निरपराध जगन्नाथ को पिटने दिया था, सज़ा तक हो जाने दी थी और वह भी माला ही थी, जिसने कावेरी से खुल्लमखुल्ला विरोध कर जगन्नाथ को अपने साथ रख लिया और यह भी माला ही है जो तर्क करती है कि लग्न के बिना किसी के साथ रहना नहीं हो सकता है क्या ?···अजीब !

क्या ऐसा नहीं हो सकता था कि माला और जगन्नाथ शादी कर लेते और संघ छोड़ देते ?···और रत्ना को लगा था कि हो सकता है। जिस इन्कलाब के साथ माला ने कावेरी का सामना किया था और जिस तरह खुल्लमखुल्ला जगन्नाथ को स्वीकारा था, उसी तरह वह यह भी कह सकती थी कि अब वह जगन्नाथ से विवाह करेगी···पर माला ऐसा नहीं कर रही है। क्यों नहीं कर रही है ?

न जाने कितनी करवट सोच चुकी थी माला के व्यक्तित्व पर। हर बार लगता कि एक परदा छीलती है तो माला दूसरा ओढ़ लेती है। रत्ना दूसरा परदा छीलती और माला तीसरा ओढ़ लेती है··परदे के बाद परदा···माला—रंग के बाद कई और रंग···

माया दुख माया और उसने उसके बारे में सोचना बन्द कर देना चाहा, पर कितना अवश होता है आदमी ? सोच उसके, पर उसकी शक्ति से बाहर। उनपर उसका कोई वश नहीं। वह बार-बार अवश होकर माला पर सोचने लगती है।

सोचती ही रही थी और माला को किसी भी बार, कुछ भी नहीं समझ सकी। रोज नई-नई चर्चाएं उठतीं, माला और जगन्नाथ कोई न कोई नई बात पैदा कर देते। सघ-भर में फुसफुसाहटें फैल जातीं और माला के बारे में फिर-फिर सोचने लगती रत्ना···पर किसी बार कोई निष्कर्ष न मिलता।

एक दिन खबर मिली कि माला सुबह-सवेरे से ही कहीं चली गई है। कहाँ ?···क्या भाग गई ?···जगन्नाथ कहाँ है ? पर उसे भागने की क्या .. थी···कावेरी उससे डरने लगी थी। दब गई थी उससे फिर . ?···

सवाल दोपहर तक सवाल ही बना रहा। जगन्नाथ भी नहीं था।

यहां, फिर शायद नागपुर जाएंगे। तारीख तय होनी है।"

खुश हुआ था मुकुन्दराव, "तो बस, ठीक है। मैं दो दिन बाद आऊंगा। जरूरत हुई तो नागपुर भी चलूंगा।"

"क्यों, नागपुर में काम है कोई ?" रत्ना समझ गई थी कि 'जम' चुका है—'जम' क्या चुका है, जाम हो गया है।

"काम ?···काम तो नहीं है। बस यों ही···" वह हंसा—झेंप-भरी हंसी। रत्ना उससे और भी कुछ कहती पर वह रुका नहीं। जल्दी में था शायद, या ठहर नहीं पा रहा था। चला गया।

सन्नाटा ज्यों-का-त्यों। रत्ना सोचती रही थी कि अब तक माला और जगन्नाथ ने क्या-क्या कर लिया होगा। शायद उन्होंने किसी शहर में कोई घर किराए पर ले लिया होगा। छोटा-सा घर। जगन्नाथ नौकरी ढूंढ़ रहा होगा···रत्ना पल्लू लेने लगी होगी माथे पर।

पल्लू !···कितनी लजीली और सुकुमार कल्पना ! रत्ना अपने ही सोच से लजा गई।

किसी दिन रत्ना भी···जगन्नाथ की जगह एक चेहरा उसने अपने-आप ही स्मृतियों में उभरता हुआ अनुभव किया—मुकुन्दराव का चेहरा। हर घड़ी नीचे दबी पलकें, संकोच···मासूमियत !

और फिर देर तक वह इसी खयाल में उलझी रही थी···उस समय भी जब नीलकंठ ने उसे आवाज़ दी, "रत्ना !"

"हूं।"

"बाहर आ ज़रा।"

"क्यों ?" उसने कुछ भुनभुनाकर कहा। वह मीठे सपनों और खयालों से कटना नहीं चाहती।

"आ तो सही। देख, माला आ गई है।"

"माला आ गई है ?" वह झपटकर बाहर आ गई थी—अविश्वसनीय आश्चर्य के साथ।

माला आ गई थी। आगे-आगे वह, पीछे-पीछे बिस्तरा-पेटी लिए हुए जगन्नाथ। कहां गए थे वे और क्यों वापस आ गए हैं ? रत्ना तेजी से उनके पीछे हो ली थी।

तुमसे बढ़कर भरोसा तो-तोल-सो हाथ ना आएगा।"

और अब चुप हो गए। नीलकंठ तम्बाकू की पीक थूकने बाहर चला गया…गया तो फिर लौटा ही नहीं। अम्णाजी ने एक गहरी सांस लेकर कहा, "तो छोड़ो।…समझना कावेरी, कि मेरी नहीं नागिन पैदा की थी तूने। तेरी ही कोख में डस गई।"

रत्ना अम्णाजी को खरी-खोटी सुना देना चाहती थी। माला ने ऐसा क्या अपराध किया है कि उसे नागिन कहा जाए…यह तो उल्टा चोर कोतवाल को डांटे वाली मसल हुई। खुद ही उसकी उम्र डस रहे थे और जब अब उसने अपना भला-बुरा सोचा है तो उसे कोसने लगे हैं…यह सब सोच-समझकर भी रत्ना ने कुछ कहा नहीं। अम्णाजी का लिहाज रखना जरूरी है। पिता की जगह है—पिता ही कहलाता है। कहीं रजिस्टर में पिता का खाली नाम भरने की नौबत आए तो यही एक है, जिसका नाम चुना लिया जाता है।

कावेरी चुप है। कुछ दिनों से उसका बोलना, चालना बहुत कम हो गया है। खास तौर से उस समय से जब से माला ने उसका कहा एक ही बार में ठोकर मारकर हवा में उछाल दिया था। जगन्नाथ को न सिर्फ अपने साथ रख लिया था, बल्कि हर मामले में मनमानी करने लगी थी।

माला को लेकर वे सब देर तक इधर-उधर की बातें करते रहे थे। श्यामाबाई ने उसके संस्मरण सुनाए थे। कावेरी ने समर्थन किया था और रत्ना उसकी यादों से घिरी रही थी…फिर सब यहां-वहां छितरा गए। अपनी-अपनी जगह पर।

संघ के आकाश पर एक सूनापन फैल गया। कुछ गुम जाने का सन्नाटा।

एक दिन मुकुन्दराव आया था। रत्ना ने ऊपरी हंसी हंसकर उसका स्वागत किया था। वह बहुत देर नहीं रुका। सिर्फ यह कहकर चला गया था कि दो दिन के लिए अपने गांव जा रहा है। जानना चाहता था अभी संघ कहीं और तो जानेवाला नहीं है?

रत्ना ने बता दिया था, "नहीं। कम से कम आठ दिन और रुकेंगे

यहां, फिर शायद नागपुर जाएंगे। तारीख तय होनी है।"

खुश हुआ था मुकुन्दराव, "तो बस, ठीक है। मैं दो दिन बाद आऊंगा। जरूरत हुई तो नागपुर भी चलूंगा।"

"क्यों, नागपुर में काम है कोई ?" रत्ना समझ गई थी कि 'जम' चुका है—'जम' क्या चुका है, जाम हो गया है।

"काम ?···काम तो नहीं है। बस यों ही···" वह हंसा—झेंप-भरी हंसी। रत्ना उससे और भी कुछ कहती पर वह रुका नहीं। जल्दी में था शायद, या ठहर नहीं पा रहा था। चला गया।

सन्नाटा ज्यों-का-त्यों। रत्ना सोचती रही थी कि अब तक माला और जगन्नाथ ने क्या-क्या कर लिया होगा। शायद उन्होंने किसी शहर में कोई घर किराए पर ले लिया होगा। छोटा-सा घर। जगन्नाथ नौकरी ढूंढ रहा होगा···रत्ना पल्लू लेने लगी होगी माथे पर।

पल्लू !···कितनी लजीली और सुकुमार कल्पना ! रत्ना अपने ही सोच से लजा गई।

किसी दिन रत्ना भी···जगन्नाथ की जगह एक चेहरा उसने अपने-आप ही स्मृतियों में उभरता हुआ अनुभव किया—मुकुन्दराव का चेहरा। हर घड़ी नीचे दबी पलकें, संकोच···मासूमियत !

और फिर देर तक वह इसी खयाल में उलझी रही थी···उस समय भी जब नीलकंठ ने उसे आवाज़ दी, "रत्ना !"

"हूं !"

"बाहर आ ज़रा।"

"क्यों ?" उसने कुछ भुनभुनाकर कहा। वह मीठे सपनों और खयालों से कटना नहीं चाहती।

"आ तो सही। देख, माला आ गई है।"

"माला आ गई है ?" वह झपटकर बाहर आ गई थी—अविश्वसनीय आश्चर्य के साथ।

माला आ गई थी। आगे-आगे वह, पीछे-पीछे बिस्तरा-पेटी लिए हुए जगन्नाथ। कहां गए थे वे और क्यों वापस आ गए हैं ? रत्ना तेजी से उनके पीछे हो ली थी।

माला अपने तम्बू में आ गई। तम्बू, जो पिछले आठ दिनों में एक बड़ा परिवर्तन झेल चुका था। उसमें कावेरी आ गई थी और कावेरी ने अपना तम्बू अण्णाजी और बिरज को सौंप दिया था। उन सभी ने समझ लिया था कि माला नहीं आएगी···और माला आ गई है!

सभी आश्चर्यचकित थे। उसके इर्द-गिर्द जुट आए। सबकी नजरों में एक सवाल—कहां गए थे तुम दोनों?···और क्यों चले आए हो?

माला का चेहरा उतरा हुआ था। कमजोर भी लग रही थी। बीमार। शायद बीमार ही रही थी वह। आते ही चारपाई पर गिर पड़ी। जगन्नाथ ने पेटी एक कोने में रखी और जुट आए लोगों को कुछ घूरकर देखा—इसे भाव से, जैसे वह इन सबको सह नहीं पा रहा है।

रत्ना ने कहा, "हवा आने दो, भई!···देखते नहीं, अक्का की तबीयत खराब है।"

वे क्रमशः सरक गए। फुसफुसाहटों के साथ। रहे सिर्फ कावेरी, माला और जगन्नाथ।

कावेरी ने इधर-उधर की बात नहीं की। जिस हाल में भी है, माला आ तो गई है। वह सन्तुष्ट लग रही थी। जिस चीज को उसने गुमा हुआ मानकर सयानों से उतार दिया था, वह मिल गई है—सन्तोष होने का ठहरा। वह हौले कदमों उसके करीब पहुंची। धीमे स्वर में सवाल किया, "माला, ···क्या हुआ था, मेरी बच्ची?" सवाल के साथ-साथ उसकी हथेली माला के सिर पर घूमने लगी।

जगन्नाथ और रत्ना एक ओर खड़े थे—चुप।

माला ने कहा, "कुछ नहीं।"

कावेरी ने जगन्नाथ की ओर देखा, जैसे उससे जवाबतलबी की हो। वह बोला, "नागपुर गए थे—घूमने। वहीं तबीयत खराब हो गई थी इसकी।"

"हमें खबर क्यों नहीं की?" कावेरी ने पूछा।

जगन्नाथ उत्तर न देकर माला के चेहरे की ओर देखने लगा। इस भाव से, जैसे पूछ रहा हो कि इसका क्या जवाब देना है।

माला ने कहा, "तुम्हें क्या खबर देते! सोचा था कि एक-दो दिन में

आ जाएंगे। आ भी गए हैं।" उसने पलकें मूंद लीं।

कमज़ोरी बहुत है, रत्ना ने सोचा। फिर यह भी कि अब उससे ज्यादा पूछताछ नहीं करनी चाहिए। आ ही गई है तो धीरे-धीरे सब मालूम हो जाएगा। एक ही बार में सब कुछ जान लिया जाए, इसकी क्या ज़रूरत है।

कावेरी चुप हो गई। गंभीर दृष्टि माला के चेहरे पर गड़ाए चारपाई की पट्टी पर ही बैठी रही—शायद किसी नतीजे पर पहुंचना चाहती थी वह। उसने माला के सिर पर अब हथेली फिरानी बन्द कर दी थी।

"अक्का को आराम करने दे, भाई !" रत्ना बोली।

कावेरी ने घूरकर उसे देखा, फिर क्रमशः जगन्नाथ और माला की ओर चली गई।

माला ने पानी मांगा। जगन्नाथ ने गिलास भर दिया। पानी पीकर वह फिर से लेट गई। थोड़ी देर चुपचाप रत्ना उसकी ओर देखती रही, फिर लौट चली। तबीयत ज्यादा खराब है। ऐसे में उससे क्या बात की जा सकती है ?

चाल में ढीलापन है। सोच बिखर गए हैं—माला से जुड़े हुए सोच। उन्हींकी बुनियाद पर रत्ना अपना घर बना रही थी। अपने अगले की भूमिका, पर···माला लौट आई है !

पर लौट क्यों आई माला ? पूछना चाहती थी रत्ना, किन्तु पूछ नहीं सकी। उत्तर देने लायक स्थिति ही नहीं थी माला की। तीन दिनों तक सवाल रत्ना को मथता रहा था और फिर एक दिन पूछ लिया था, "तू गई कहां थी, अक्का ?"

"बताया ना, घूमने गई थी।" माला ने पिछला उत्तर दोहरा दिया था। इन दिनों बहुत गंभीर रहने लगी है। रहने लगी है, या हो गई है ?

"नहीं, सिर्फ यही बात नहीं है। कुछ और भी है।" रत्ना ने कहा।

माला चुप रही। उसकी गंभीरता पूर्वापेक्षा घनी हो गई।

"तू मुझसे बात नहीं चुरा सकती है। मैं जानती हूं कि कोई और बात है। तू छिपा रही है।" रत्ना उसके सामने बैठ गई।

एकान्त है। रात। जगन्नाथ प्राजकल बाहर मंडली में जा बैठता है। जिन्दगी ही कितनी है यहां की। तम्बू में या तम्बू से बाहर गिने-चुने लोगों के बीच—यही कुल जिन्दगी।

लालटेन की बत्ती गुकगुकाने लगी है। माला ने उसे ठीक किया। बोली, "तुमसे नहीं छिपाना चाहती···पर डर लगता है कि तू इधर-उधर कह न दे।"

"तुझे मुझपर विश्वास नहीं है, मक्का !···नहीं है, तो मत कह।" रत्ना रूठने के टोन में बोली।

"नहीं, यह बात नहीं है।" माला अपनी जगह लौट आई।

"फिर ?"

"अगर तू ठीक तरह मेरी बात नहीं समझ सकी तो···"

"क्यों ? क्या अक्कल नहीं है मुझमें ?"

माला चुप हो गई।

"तू बिलकुल बच्ची ही समझती है मुझे ?" रत्ना ने कुछ नाराज होकर कहा, "देख, मैं कितनी बड़ी हो गई हूं ?" रत्ना उठकर खड़ी हो गई—तनी हुई, "अब मैं सब समझने लगी हूं। पलक दबाना, किसीको 'जमाना', जांघ तक साड़ी उछाल देना और वह सब करना, जो हमारा धर्म है।···"

माला ने चौंककर देखा—हां, ठीक ही कह रही है वह। बड़ी हो गई है, बहुत बड़ी। लालटेन की मद्धिम रोशनी एक दिशा से गिर रही थी और रत्ना के सीने के उतार-चढ़ाव स्पष्ट देखे जा सकते थे। उसके शरीर की गदराहट, नशीली आंखें···सब ! अब इस योग्य हो चुकी है वह कि उससे सब कुछ कहा-सुना जा सके। माला ने एक गहरी सांस ली, "तो सुन !···मैं घूमने नहीं गई थी नागपुर," उसने एक क्षण रुककर कहा, "तू जानती है, औरतें मांएं कैसे बनती हैं ?"

"जानती हूं।" रत्ना ने अक्खड़पन से कहा।

"तो सुन, मैं नागपुर इसलिए गई थी कि कभी मां न बन सकूं।" माला ने इस तरह कहा, जैसे धोने के बाद एक कड़क कपड़ा फटकारा हो। कर्कश आवाज करती हुई फटकार।

"क्या मतलब ?" रत्ना चौंक गई।

"मतलब यह कि अब मैं कभी भी माँ नहीं बनूंगी। किसीकी माँ नहीं बनूंगी।···मेरे शरीर-पाप कभी बेटे-बेटी नहीं कहलाएंगे। मेरे साथ ही मेरे लहू की वह परम्परा खत्म हो जाएगी, जो भाई से मुझ तक आई है या भाई से पहले उसकी भाई तक थी···समझी !"

रत्ना का चेहरा उतर गया···उसने बेचैनी से थूक निगला। ओह, कितना भयावह सच !···इसका मतलब है कि माला ऑपरेशन करवा आई है, पर क्यों !·· उसने चीखना चाहा, पर चीख कितनी दब चुकी है ? मुर्दा आवाज़ बनकर बाहर आई, "मगर ऐसा क्यों किया, अक्का ?···तू कैसी औरत है ? तू मां नहीं बनना चाहती ?"

माला की आवाज़ भी मुरदा हो चुकी थी, "हां। मैं ऐसी ही औरत हूं। मुझे मां बनना पसन्द नहीं है। मुझे किसीकी बीवी बनना भी पसन्द नहीं है और मुझे मर्द बदलते रहना पसन्द है। मुझे कुछ भी पसन्द नहीं है और सब पसन्द है।"

रत्ना को लगा कि वह पागल हो रही है—कदम-दर-कदम पागल होती जा रही है। पहला पागलपन था सच से भागने की योजना बनाना; दूसरा, प्रेमी के साथ कायरता बरतना; तीसरा, प्रेमी को बिना विवाह घर में रख लेना और अब यह घृणित पाप···छि-छि: ! रत्ना के शरीर पर चींटियां रेंगने लगी हैं। भय, आवेश और घृणा की चींटियां।

माला कह रही थी, "तू कारण जानना चाहती थी ना ? जान लिया कारण ? समझ गई कि मैं कहां गई थी···क्यों गई थी ?···अब तू जा !"

रत्ना को जाने क्यों उससे भय लगने लगा। माला का चेहरा मटमैला हो गया था। भावों के नाम पर सपाट—सफेद कागज़। कुछ नहीं लिखा है उसपर। औरत, माँ, प्रेयसी···कुछ भी नहीं। उसकी आंखों में रत्ना को एक नर-कंकाल जैसे गड़े नज़र आने लगे हैं···डरावने और कुरूप··· माला हंसिनी का चेहरा है यह ? उसने वितृष्णा से सोचा।

"अब कभी कुछ न पूछना मुझसे। अब तू सब समझ चुकी है।" माला ने कहा।

रत्ना का जी हुआ उसे गाली दे—शैतान है तू !···नीच !···तू
क्या है, यह कोई कभी भी नहीं समझ सकता !···पर वह कुछ न कह सकी।
बदन में सिहरन होने लगी थी और माला के सामने ठहर पाना दूभर हो
रहा था—चली आई।

बाहर मंडली में कहकहे लग रहे थे। जगणाजी, विमन,
वगैरा को फिर से मसाला[1] मिलने लगा है। हर दिन पीते हैं और
कहे लगाते हैं। रत्ना जब उनके पास से निकली तब उसने जगन्ना
देखा—एक ओर सिकुड़ा बैठा था। रत्ना को वह एक मरे हुए कुत्ते
लगा। पर यह सोचकर हैरान हुई कि जगन्नाथ ने माला को स्वयं सा
जाकर यह सब करवाया है और जो करवाया है वह बिलकुल पाग
है···क्या माला के साथ-साथ वह भी पागल हो गया है !

रात को देर तक नींद नहीं आई। माला अब कभी मां नहीं
सकेगी। कहती है—उसने कावेरी के लहू की परम्परा खत्म कर दी
क्यों खत्म कर दी है परम्परा ?···कितना जोर देती रही थी दिमाग
किन्तु किसी बार रत्ना कुछ भी नहीं समझ पाती थी।

माथा चटकने लगा। अगर इसी तरह पागलों की इस बस्ती में र
रही तो वह भी किसी दिन पागल हो जाएगी !···अनायास मुकुन्दराव
चेहरा उभरने लगा। अक्सर इसी तरह उभर आता है। रत्ना का जगन्ना
ईश्वर न करे कि मुकुन्दराव जगन्नाथ जैसा हो !···पागल ! अपनी प्रे
का मां-पन छीन लिया उसने !···या अपनी आंखों के सामने छिन ज
दिया !

नीच जगन्नाथ है···और वैसी ही नीच माला !···उसे लगा कि
दोनों उस गीध की तरह हैं जो मांस नोच-नोचकर खाते हैं।···वे म
नोच-नोचकर खा रहे हैं। अपने होनेवाले बच्चों का मांस !···जनम
लपने से पहले ही बोटियां चबा गए हैं उनकी।

तम्बू के अन्धेरे हिस्से में दो चेहरे हैं—रत्ना ने डरते हुए देखा। ए
का और दूसरा जगन्नाथ का। दोनों के मुंह पर लहू लगा हु
!···बच्चों का लहू पीनेवाले प्रेत !

१. मसाला : देशी शराब

दो और चेहरे भी तो हैं—रत्ना और मुकुन्दराव के चेहरे !···उनके करीब पहुंच रहे हैं। प्रेत-चेहरों के करीब !···

नहीं ! रत्ना ने भयातुर आंखें मूंद लीं। दोनों हथेलियों से कसकर दबा लीं। पर चेहरे ओझल नहीं हुए। वे बन्द आंखों में भी समाए रहे। उसे एक छटपटाहट ने घेर लिया···पसीना आने लगा था। घबराकर बाहर निकल आई···शरीर में कंपकंपी होने लगी है।

मंडली उखड़ चुकी है ! सब अपने-अपने तम्बुओं में जा चुके हैं। एक कुत्ता—लजीला कुत्ता घूम रहा है वहां। रत्ना उससे भी डरी। क्या लौट चले अपने तम्बू में ? सो जाए ? जिस दिन ठीक तरह सो नहीं पाती उस दिन शो में ठीक से पांव नहीं उठते···जोश कम हो जाता है। पर क्या इस तरह सो सकेगी रत्ना ?···नहीं सो सकेगी। तम्बू में लहू पीनेवाले प्रेत घुसे हुए हैं !···

कम्पन पुनः हुआ।···भयातुर रत्ना ने चारों ओर देखा। अब वह लजीला कुत्ता भी धरती सूंघ-सांघकर गायब हो चुका था। सन्नाटा··· डरानेवाला सन्नाटा, और सन्नाटे के बीच तमाशे का लम्बा-चौड़ा पंडाल—एक अजगर की तरह मुंह फाड़े हुए, रत्ना को डसने की कोशिश करता हुआ और यहां-वहां थोड़े-थोड़े फासले पर तम्बू। फिर पैरों में छुपाए हुए बैठे प्रेत !···

रत्ना फुरती से कावेरीबाई के तम्बू की ओर चली। आज वहीं सो रहेगी। वह पूछेगी तो कहेगी—डर गई थी !

कावेरी के तम्बू में समा गई वह। चौंककर जागी कावेरी, "कौन ?"

"मैं। रत्ना।"

"क्यों ?" वह घबरा गई।

"कुछ नहीं।" रत्ना उसके करीब आ बैठी, बिलकुल सटकर। बोली, "मुझे डर लग रहा है आज।"

कावेरी ने आश्चर्य से उसे देखा। फिर बिस्तरे से चादरा उठाया, बोली, "तो चल मेरे साथ। वहीं सो जाऊंगी।···यहां तो वह है ही।"

एक ओर मण्णाजी पड़ा था—मुरदे की तरह। मुंह से मसाले की तेज दुर्गंध उठ रही थी।

× × ×

दो दिन के लिए कहकर गया मुकुन्दराव, चौथे दिन आया—वह भी सीधा नहीं। जाकर तमाशे में शरीक हो गया, फिर आधी रात रत्ना के तम्बू में।

आ गया है।…कावेरी को अण्णाजी पहले ही बता गया था। हमेशा की तरह अगली पंक्ति में बैठा था मुकुन्द। साफ-साफ देखा जा सकता था।

कावेरी ने रत्ना को हिदायत दी, "कितने दिनों तक खींचेगी इसे?… फटाफट् खत्म कर! ज्यादा ढील देना भी ठीक नहीं होता।"

रत्ना का मूड बिगड़ गया। हमेशा एक ही बात, एक ही इच्छा। बस। यह औरत है, या मशीन? झल्लाकर पूछा, "कैसे खत्म करूं? क्या गोली मार दूं उसे?"

"हां, गोली ही मार दे!…" कावेरी ने मुसकराकर कहा, "सीने की नहीं, जवानी की!"

रत्ना बौखला पड़ी, "तू कैसी बातें करती है, माई?…मैं…मैं तेरी बेटी हूं, या सखी?"

"सखी!" कावेरी ने गंभीर होकर कहा, "जब बेटे-बेटियां बराबर की लम्बाई के हो जाते हैं, तब वे सखा या सखी ही होते हैं। समझी! उनसे बराबर जैसी बात ही होनी चाहिए। अब तू बच्ची नहीं है।"

"इसीलिए मुझे तेरी ऐसी बातें अच्छी नहीं लगती हैं। मैं अब बच्ची नहीं हूं।"

"अब ज्यादा दिमाग मत खा। वह आता होगा…" कावेरी ने बात खत्म ही की थी कि वह आ गया। तम्बू में सारस की तरह गरदन डालकर पूछा, "आ जाऊं, रत्ना बाई?"

"अरे, पटेलजी!… आओ-आओ!" रत्ना तो नहीं, कावेरी बोली। रत्ना को आश्चर्य हुआ। कैसे पल में मूड बदलती है कावेरी।

वह भीतर आ गया। सिर नीचे। बोला, "बस, ऐसे ही दाम्म की

तारीफ करने चला आया···बधाई !"

"हाँ-हाँ, बैठो, बैठो।" कावेरी ने चारपाई की ओर इशारा किया फिर रत्ना की ओर पलक दबाकर कहा, "पटेलजी को कुछ ठंडा-गरम पिला, तब तक मैं बाहर का काम देखती हूँ।" वह चली गई।

रत्ना के दिमाग में कावेरी के शब्द गूंज रहे हैं···फटाफट खत्म कर इसे !···ज्यादा ढील देना भी ठीक नहीं है···और सूझ नहीं रहा है कि क्या कहे, किस तरह कहे ?···कहने के लिए कोई बात भी तो हो। एक पल सोचती रही थी वह, फिर पूछा, "सुपारी दूँ ?"

वह चौंक गया। कहा कुछ नहीं, सिर्फ उसकी ओर हैरानी से देखने लगा। जैसे कह रहा हो– 'सुपारी ?'

रत्ना ने दृष्टि झुका ली। भूल हो गई है उससे। बेसिर-पैर की बात !

वह बोला, "मुझे जरूरी काम लग गया था, इसीलिए दो दिन की देर···"

'हाँ, मैं भी यही सोच रही थी कि···"

"पर अब मैं पूरी तरह फ्री होकर आया हूँ। कम-से-कम पन्द्रह दिनों तक कोई काम नहीं है।" उसने कहा, और उसे भी लगा कि मूर्खतापूर्ण बातें कर रहा है। बोलते-बोलते चुप हो गया।

रत्ना भी चुप है।

थोड़ी देर की चुप्पी के बाद वह पुन: बोला, "रत्नाबाई, तुम बहुत अच्छा नाचती हो। जब से देखा है, जी होता है कि देखता ही रहूँ।··· क्या बात है। वाह-वाह !"

रत्ना सिर्फ मुसकराई। उसको ओर देखने पर लगा, जैसे एक घर सामने खड़ा हुआ है। आँगन। आँगन में तुलसी-बिरवा। तुलसी-बिरवे में पानी उड़ेलती रत्ना। रत्ना के माथे पर पल्लू। दर्प में मदमगुष ··

वह फिर चुप हो गया था। रत्ना ने उसकी ओर देखा, इस तरह, जैसे कहा हो—"कुछ बोल ना !"

और वह बोलने लगा, "तुम्हें यहां देखता हूँ तो लगता है कि एक घर औरत को देख रहा हूँ।···बिलकुल घर औरत। बल्कि ऐसी लगती हो

उसने···जितना कहा, यों ही कह दिया था। उससे तो जाहिर होता नहीं है कि सगन करेगा वह। क्या उत्तर दे रत्ना ?

"बोल ना !"

"अभी साफ-साफ नहीं कहा है कुछ।" रत्ना ने सिसकियाँ थामीं, "सिर्फ इतना कहा था कि उसका मन होता है कि मुझसे लग्न कर ले !"

"मन से क्या होता है। मन तो मेरा भी होता है कि मैं इन्दिरा गांधी बन जाऊं···पर मन करने से कुछ हो जाता है क्या ?" माला ने तर्क किया।

रत्ना चुप।

जगन्नाथ ने कहा, "उससे साफ-साफ क्यों नहीं पूछा ?"

वह चुप ही रही।

"ठीक है। मैं पूछ लूंगा।"

रत्ना ने जगन्नाथ की ओर देखा और उसे लगा कि वह प्रेत नहीं है। मासूम बच्चे का चेहरा है उसके धड़ पर। और ऐसी ही कुछ माला। वह माला के सीने में फिर समा गई।

माला थपथपा रही थी, "अच्छा-अच्छा, अब रो मत !···पूछेंगे उससे। और चिन्ता मत कर। सब ठीक हो जाएगा।"

ठीक हो गया। तमाशा खत्म होने के बाद जगन्नाथ उसे अपने साथ लाया। कावेरीबाई देख रही थी। जी हुआ था कि रोक दे। कह दे कि मुकुन्दराव नहीं जा सकता है रत्ना के पास, पर चाहकर भी रोक नहीं सकी। कैसे रोक सकती है—जगन्नाथ उसके साथ है। माला पास खड़ी है।···और कावेरीबाई जानती है कि जवान उम्र से विरोध नहीं लिया जा सकता। क्या बात रहेगी अगर रत्ना ही उलट पड़ी ?···तिसपर मुकुन्दराव यों ही कोई बनिया-बक्काल नहीं है जिसे झड़प दे दी जाए। नेता ! पीछे पड़ गया तो कावेरी का सारा संच हवा में

रही थी और मुकुन्दराव—हमेशा मिनमिनाता रहनेवाला

मुकुन्दराव एक शेर की तरह रत्ना के तम्बू में समा गया था। फिर रत्ना के सामने जा पहुंचा। जगन्नाथ सब कुछ बता चुका है और जगन्नाथ की बातें सुनकर एक नतीजे पर पहुंच गया था मुकुन्दराव। रत्ना ऐसी-वैसी ही नहीं है। बिलकुल घरू किस्म की औरत है। जगन्नाथ ने भी समर्थन किया था और फिर मुकुन्दराव ने वायदा किया था कि वह रत्ना को स्वीकार लेगा! रत्ना की प्राप्ति के अलावा एक और लाभ भी था। जिला पंचायत का चुनाव सिर पर है और मुकुन्दराव उम्मीदवार। जनता के निचले वर्ग में इस तरह एक सामाजिक क्रांति कहलाएगा रत्ना को स्वीकारना। सामान्य वर्ग का बहुमत मुकुन्दराव को समर्थन देगा। इसीलिए स्वीकारने आया है।

रत्ना ने उसका स्वागत किया, "बैठो।"

वह बैठ गया। रत्ना एक ओर खड़ी थी।

मुकुन्दराव ने कहा, "मुझे जगन्नाथ ने सब बता दिया है। मैंने कहा न था रत्नाबाई···मेरा मतलब है कि मैंने पहले ही कह दिया था कि तुम घरू औरत हो।···बिलकुल घरू!···कई बार आदमी जहां उसकी जगह नहीं होती, वहां पैदा हो जाता है। तुम्हारी जगह यहां नहीं है।"

रत्ना क्या कहे? विश्वास करने की कोशिश कर रही है—क्या सच ही कह रहा है मुकुन्दराव?···क्या सचमुच वह उसे अपने घर ले जाएगा···घर, आंगन, नाज···एक पुलक समा गई है मन में।

"सच बात यह है रत्नाबाई, कि मैं भी कोई ऐसा-वैसा नहीं हूं। पहले दिन आया था तो सिर्फ बधाई देने आया था—बस! मुझमें और बेलापूरकर में बहुत फर्क है। मुझे यह सब पसन्द नहीं आता, जो सच को आड़ में लोग करते रहते हैं।"

"मुझे भी पसन्द नहीं है।"

"मैं जानता हूं, सब जानता हूं। जगन्नाथ ने सब बता दिया है। इसीलिए तो आया हूं।" वह बोला, "मैं तो अपनी बात बता रहा हूं कि मैं···मैं क्यों आया था। पहली बार में ही तुम्हें देखकर समझ गया था कि तुम वह नहीं हो जो और लोग समझते हैं। तुम स्टेज पर कुछ और हो, वैसे कुछ और!···"

रत्ना फिर से तालाब में उतरने लगी है—पहली बार एकदम जा

गिरी थी और अब धीरे-धीरे एक-एक अंग डूब रहा है…गहरे और गहरे…जगन्नाथ और माला ने क्या कर दिया है उसे ? बिलकुल जादू की तरह वह सब घट रहा है जिसके लिए बड़ी-बड़ी योजनाएं बनाई जाती रही हैं। एकदम अविश्वसनीय !…

"तो…तो मैंने सोच लिया है कि मैं तुमसे शादी करूंगा। तुम्हें वह सब दूंगा जिसकी तुम हकदार हो ! धन, मान, इज्जत…सब !"

रत्ना ने महसूस किया, जैसे उसके दिल के पास कोई बड़ा फोड़ा था। पीव काट रही थी उसमें और एक झटके से मुकुन्दराव ने उसे चीर डाला। पीव बहकर निकल गई और सारे शरीर में एक तसल्लीदेह ठसक आ बैठी—आनन्द के रोमांच से पूर्ण !…

"रत्नाबाई, तुम्हें कोई ऐतराज तो नहीं है ?…मैं तुम्हें पाना चाहता हूं, पर तुम्हें तुम्हारा हक देकर ही पाना चाहता हूं।…" मुकुन्दराव की आवाज़ सिनेमा के हीरो की तरह भीग गई, "बोलो, क्या तुम भी…"

रत्ना क्या बोले ? बोलने लायक हालत ही नहीं है। बस, डुबकियां ले रही है—आनन्द का चरम ! चरम, जहां शब्द गुम जाते हैं। रहता है सिर्फ शान्तिपूर्ण सन्नाटा।

मुकुन्दराव ने पूछा, "क्यों, कोई ऐतराज है ?…"

"एं ?" वह चौंकी। इस तरह जैसे देर की नींद के बाद जागी हो।

"हां, मुझसे शादी करने में तुम्हें कोई…"

"नहीं-नहीं, पर…"

"पर क्या ?"

"डरती हूं। कहीं…"

"डर कैसा ?"

"बस, डर लगता है।"

"किस बात का डर ?"

"पता नहीं।"

"क्या बाकेबिहारी का डर लगता है ?…" उसने पूछा। फिर अचानक …मैं बोला, "उसका इन्तज़ाम मेरे पास है। तुम बालिग हो। तुम्हें [illegible] करना। सरकारी कायदा है। कोर्टमैरिज ने कानून बना

दिया है कि कांग्रेस पार्टी अपना बाकायदा घोषणा हुआ है। उसपर कोई रंग-ढंग नहीं।"

रत्ना चुप है।

मुकुन्दराव ने उसका चेहरा देखा और स्वयं ही सकुचा गया। उसे लगने लगा कि अब आगे नहीं बढ़ सकेगा। जगन्नाथ ने जितना बता दिया था और वह खुद जितना जान रहे हुए था, वह सब अब तक बहे गए वर्षों में नष्ट हो चुका है और हमेशा की तरह फिर से एक हड़-बड़ी पैदा हो गई है उसके दिल-दिमाग में। रत्ना की चुप्पी और डर वाली बात ने उसे और भी हकबका डाला। कहीं मुकुन्दराव मूर्खता तो नहीं कर रहा है?…अब तक रत्ना के मुँह से तो कुछ सुना नहीं है उसने? जगन्नाथ के कहे और अपने सोचे हुए पर ही इतना बढ़ाचढ़ाकर बोल गया है।

और रत्ना सोच रही है कि जितना कुछ कह चुका है मुकुन्दराव, उसके आगे रत्ना के पास कुछ भी शेष नहीं है। सब कुछ उसने खुद ही कह दिया। हाँ-ना, स्वीकार-अस्वीकार, पसन्द-नापसन्द—सब! अब क्या कहेगी रत्ना? वह बार-बार साड़ी सम्हाल लेती है। सब की हमिनी, जिसे कभी किसी बार हजार-हजार की भीड़ के सामने सिसकी दिखाने, परन्तु उछालने में लाज नहीं आई, आज अचानक लाज से भर उठी है। बार-बार लगता है कि वह किसी ऐसे गुप्त धन की मालिक है, जो आँखों के इधर-उधर भटकाने तक से लुट सकता है।

"तुम सोच-समझकर जवाब दे देना मुझे। जगन्नाथ से कहलवा देना।" अचानक मुकुन्दराव उठ खड़ा हुआ।

रत्ना को आश्चर्य—क्या हुआ उसे? इसमें निर्णय के लिए शेष क्या है? मुकुन्दराव तम्बू के बाहर जानेवाला था। रत्ना ने पल-भर में अपने-आपको संयत किया। व्यर्थ बात लटकाए रहने में तुक क्या है। कहा, "सुनो, पटेलजी!…"

रुक गया वह।

"तुमने सब सोच-समझ लिया है ना!…" प्रार्थना के स्वर में रत्ना ने पूछा। माला ने कहा था—बात साफ-साफ होनी चाहिए। रसी-

रही···

"मैंने ?···" मुकुन्दराव ने कहा, "मैंने तो सोच ही लिया है। तुम अपनी बात कहो, रत्नाबाई !···"

"मैं क्या कहूं ?" वह फिर पुलक से भर आई।

"यही कि मैं पसन्द हूं या नहीं···"

"आप बड़े लोग हैं—राजा। धन-मानवाले। सभा-सोसायटियों में आपकी इज्जत है। लेड़े के पटेल। पसन्द आपकी होगी या मेरी ?"

"पसन्द सबकी होती है।"

"तो फिर मेरी पसन्द है—बस !···" रत्ना सहसा झुकी और मुकुन्दराव के पैर छूने लगी।···

"अरे-रे-रे···" वह पीछे हट गया, "यह क्या करती हो तुम ?"

"अपनी पसन्द बता रही हूं।"

मुकुन्दराव चुप हो गया, पर कितना कुछ बोल रहा था उस चुप के बावजूद ! रत्ना सब सुन पा रही थी। वह टकटकी लगाए उसकी आंखों में देखने लगा था। खूब गहरे उतरने की कोशिश करता हुआ।

रत्ना ने माथे पर पल्लू खींच लिया। मुकुन्दराव बाहर चला गया। रत्ना ने तम्बू का परदा सरकाकर देखा—वह जगन्नाथ और माला को साथ लिए हुए कावेरीबाई के तम्बू की ओर चला जा रहा है···फिर से आनन्द के सरोवर में उतर गई रत्ना हसिनी !···

कावेरीबाई बहुत गरजी-बरसी। माला को भी बहुतेरा समझाया। तरह-तरह से, पर सब व्यर्थ !··· रत्ना ने पल्लू माथे पर खींच लिया तो खींच ही लिया।

मुकुन्दराव उसी दिन अपना फैसला दे गया था। अबकी बार आएगा तो लग्न की तारीख लेकर आएगा। विठोबा-रखुमाई के मन्दिर में जाएंगे और धर्म से दोनों एक-दूसरे को समर्पित।

कावेरीबाई को गहरी चोट लगी। सिर्फ उसीको क्या, सारे सब को। एक बार फिर वही मुरदनी फैल गई जो कभी कावेरी का शरीर

टूटने पर फैली थी···उस बार एक उम्मीद भी थी—माला और रत्ना ? कावेरी ने जवानी के अक्स उतार दिए थे उनमें। पार्टी ने सोचा था, उन अक्सों के सहारे जिन्दगी कट जाएगी, पर ये अक्स क्रमवार गायब होने लगे···माला का तो होना-न-होना बराबर-सा ही हो गया था। अब रत्ना भी ऐसे जा रही है, जैसे थी ही नहीं।

अब ?···रात-रात-भर मंडली जागती। क्या होगा अब ?···बिलकुल कलियुग है !···लोग अपना धर्म-कर्म ही छोड़े दे रहे हैं···सच की औरतें घर औरतें बनने लगी हैं। यह तो ऐसा ही हुआ जैसे राम के मंदिर में रावण की प्रतिष्ठा होने लगी हो !···सब उलटा।

कावेरी अन्तिम क्षण तक किसी अनजान विश्वास पर टिकी हुई है। पहले अण्णाजी के मार्फत समझाया था, फिर श्यामाबाई के मार्फत और अन्त में खुद समझाने आ पहुंची।

रत्ना तमाशे में अब भी उतरती थी, पर जाने क्यों शो में वह मस्ती पैदा नहीं कर पाती थी, जो कावेरी के संच की विशेषता रही थी। पलक दबाना, पिंडली उठाना, मुसकराना—चार दिनों में सभी कुछ बदल गया।

शो खत्म हुआ था और वह तम्बू में आई ही थी कि कावेरी आ पहुंची। इन कुछ ही दिनों में वह बहुत बूढ़ी लगने लगी है। झुर्रियां भी अधिक गहरा गई हैं···चिन्ता अपने-आपमें एक किस्म का बुढ़ापा होती है। थोड़ी देर रत्ना के सामने चुपचाप खड़ी रहकर सोचती रही कि बात कहां से प्रारम्भ करे, फिर शायद सोच चुकी। आवाज में एक विशेष तरह की थर्राहट पैदा की। बोली, "रत्ना !···मैं जानती हूं, तू बहुत थकी हुई है। ऐसे मौके पर तुझे मेरी बातें अच्छी नहीं लगेंगी, पर जी नहीं मानता, इसलिए कह रही हूं।"

रत्ना जानती है कि कावेरी क्या कहेगी। यह भी जानती है कि उसे क्या कहना होगा···उसने कहा, "कहो। अच्छी बात होगी तो मुझे जरूर अच्छी लगेगी।"

"समझ-समझ का फर्क है।" कावेरी ने कहा, "हो सकता है कि तुझे मेरी अच्छी बातें भी बुरी लगें। हम जिस समाज में जीते हैं, हमारी जगह

नहीं है। दूसरों की दुनिया दूर से देखने में बड़ी भली लगती है मेरी ।। पर सच यह है कि वहां पहुंचकर सन्ताप होता है। अगला-पिछला ोच-समझकर फैसला करना चाहिए। जल्दबाजी ठीक नहीं होती।"
"मैं समझी नहीं माई!"
'वही समझा रही हूं।" कावेरी उत्साहित हुई। रत्ना जिस संयत में उत्तर दे रही है उससे प्रकट है कि वह बात करना चाहती है।
"हमारी दुनिया यही है, जहां हम हैं। नाच-गाना, हंसना-मुसकराना। रातें बरबाद करके दूसरों की रातों में चैन भरना।···हमें अपनी से बाहर जितनी दुनियाएं दिखती हैं, सब अच्छी लगती हैं। पर य हीं है मेरी बच्ची!···सब दिखावा है।"
त्ना का जी हुआ कह दे कि तुम अपनी सलाह अपने पास रखो, प हा। निश्चय किया है कि दस-भर किसीसे कड़वा नहीं बोलेगी।" रह से यह सब दूर, बहुत दूर होनेवाले हैं उससे। न जाने कित कितने घण्टों का साथ बचा है। फिर तो कभी-कभार ही मिलन रेगा।···और वह भी मालूम नहीं कि मुकुन्दराव को पसन्द आएगा । अगर नहीं आया तो रत्ना कभी भी नहीं मिलेगी। मुकुन्दराव न्द, रत्ना की पसन्द!···एक औरत जो ठहरी रत्ना।
ब दिखावा है!···हम, पटेल मुकुन्दराव···यह भीड़···सब कुछ है।" कावेरी भावुक हो उठी, "दूसरों को लगता है कि हम अच्छे लगता है कि वे अच्छे हैं। पर सब तरफ दोष है। सब नाटक। सब ब तमाशा। हर आदमी को विठोबा ने एक कपड़ा दिया है कि ले। वह उसके नाप का कपड़ा होता है। दूसरे में उसका तन सकता। बस, ऐसा ही कुछ जिन्दगी का हिसाब होता है। जो ह है, वही ठीक है--उसके अपने कपड़े में। न उसका कपड़ा कोई न सकता है, न वह किसी और का कपड़ा पहन सकता है। इस-ती हूं, बेटी! अपनी दुनिया मत छोड़। यह कपड़ा है अपना। में। इससे दूर हमारी कोई जगह नहीं है।"
ा चुप है, पर भीतर ही भीतर बबकने लगी है। कावेरी उसे ाहती है। बड़े अधिकार से समझा चाहती थी, अब भीही

वाणी से। पर अब नहीं छली जाएगी रत्ना!…वह छल के परे हो की है।

कावेरी ने कहा, 'मैंने तुझे जनम दिया है। मेरा अंश है तू। मेरे पने बदन का ही कोई हिस्सा। तेरा भला-बुरा मुझे भी उसी तरह अनु-व होता है, जैसा अपना अनुभव करती हूं। स्वभाव मेरा कठोर है, पर 'मां हूं – तेरी मां! तुझे गड्ढे में नहीं गिरने दूंगी!"

तो रत्ना गड्ढे में गिर रही है?…रत्ना ने जबड़े भींच लिए। कावेरी ा है—रत्ना को विश्वास नहीं होता। इस नर्क से निकलकर वह हमेशा-मेशा के लिए एक शांत और इज्जतदार जिन्दगी जीने जा रही है और ावेरी कहती है कि यह गड्ढा है? चीखकर कावेरी से बाहर निकल ाने के लिए कहना चाहती थी, किन्तु संयत रही। जितना संयम है उसके ास, उतनी संयत रहेगी। निश्चय कर लिया है।

"तेरी उम्र में मैंने भी बड़े सपने देखे हैं रत्ना! मैं भी सोचती थी के तेरी ही तरह किसी घर-द्वार की रानी बनूंगी, पर हो नहीं पाया।… ब साधें मन में ही रह गईं। एक-दो मरदों का सहारा ढूंढ़ा, पर बेकार। े कुछ रातों तक साथ रहे, फिर गायब! सपने सपने ही होते हैं। उन्हें देखना चाहिए और दिमाग से बुहार फेंकना चाहिए। समझदार आदमी ऐसा ही करते हैं।"

"ठीक है। मैंने सुन लिया। अब तू जा!" रत्ना ने झौंसलाकर कहा। संयम खत्म हो चुका है।

कावेरी को लगा कि अच्छा-भला सन्तुलित रहा पत्थर अनायास किसी ऊंची चोटी से लुढ़कने लगा है—ऊबड़-खाबड़ की ओर। आश्चर्य से उसे देखने लगी। कितनी सोच-समझ की बातें की हैं इससे और यह…

"जा मां!"

"जाती हूं।" कावेरी ने एक गहरी सांस ली, 'चली जाऊंगी, पर कहे जाती हूं कि तू एक न एक दिन रोएगी!…तेरे सारे सपने सवेरे की नींद की तरह टूटकर उड़ जाएंगे। अभी तूने देखा क्या है, बेटी!"

रत्ना ने उसे क्रोधित होकर देखा। कावेरीबाई बाहर जा रही थी… चली गई।

रत्ना ने संतोष की सांस ली। कम्बख्त, बहका रही थी उसे! इस तरह जैसे बहका ही लेगी और रत्ना मूर्ख है···कोई दूध-पीती बच्ची! मबोध! कावेरी के बहे से बहक जाएगी! पागल कावेरी। उसने कपड़े उतारे, दूसरे पहने और लेट रही। कब आएगा मुकुन्दराव!···आ ही जाएगा एक-दो दिन में।···अब तो जितनी जल्दी आ जाए उतना ही अच्छा है।

एक बार पुनः विस्मय हुआ—विश्वास नहीं होता है—कैसे इतना कुछ नाटकीय घट रहा है रत्ना और मुकुन्दराव के जीवन में!···पर जो कुछ घट रहा है, उसपर अविश्वास भी कैसे किया जा सकता है? वह मुकुन्दराव के गुदगुदे खयालों में खो गई···अधिक देर तक वे सुखद क्षण नहीं रह सके। बाहर से शोर उठने लगा था। शायद झगड़ा हो रहा है। कावेरी, अण्णाजी, माला···सभीकी तेज-तेज आवाजें। वह उठी। बाहर चली आई। माला के तम्बू पर फिर भीड़ है!···

नीलकंठ बिलकुल द्वार पर ही था। एक झटके से रत्ना ने उसे एक ओर धकेला। रास्ता बनाया और भीतर जा पहुंची।

"हरामजादी!···कुतिया!···तू समझती क्या है मुझे? मेरे सामने हो···मैं तेरी बोटी-बोटी नोच डालूंगा!···" जगन्नाथ गरज रहा था—जोर-जोर से।

रत्ना ने देखा माला एक ओर पड़ी थी। कपड़े नुचे हुए। गालों पर तमाचों के निशान। दिल जोर-जोर से चलता हुआ। लगता था कि एक धौंकनी चल रही है—ऊपर-नीचे। जाहिर था कि जगन्नाथ ने पीटा है उसे। बहुत पीटा है!

कावेरी उसे सम्हालने के लिए करीब ही झुकी हुई थी। बड़बड़ाती हुई, "अरे तू क्या नोचेगा बोटी-बोटी!···ये तेरी जोरू है क्या? तू कौन है इसका?"

"मैं···मैं···" जगन्नाथ ने दांत भींचे, "इसीसे पूछ कि मैं क्या हूं?···क्या हूं मैं?"

"पर तू उसे मारता क्यों है?" रत्ना पर भी सहन नहीं हुआ।

जगन्नाथ ने सिर्फ उसे घूरकर देखा।

रत्ना ने !

पर आंसू नहीं [illegible]
पर हाथ लगाया था और वह जोर से कराह उठी थी। रत्ना का मन रोने को हो आया। कम्बख्त !···इसीके लिए माला यह सब कर रही थी ? नीच !···

कावेरी ने गरजकर कहा, "तू निकल जा यहां से !···अभी, इसी वक्त चला जा ! वर्ना इतनी जूतियां पड़वाऊंगी तुझमें कि···हां !"

"हां-हां, चला जाऊंगा। इस रंडीखाने में रहूंगा ही क्यों !" जगन्नाथ ने घृणा से धरती पर थूका। बाहर निकल गया।

माला बोलना चाहती थी, पर बोल नहीं सकी। कावेरी और रत्ना ने उसे सहारा देकर चारपाई पर लिटा दिया था। धौंकनी अब भी चल रही थी और माथे पर पसीने की बूंदें चुहचुहा आई थी।

कावेरी ने तम्बू के द्वार पर खड़ी भीड़ को सम्बोधित किया, "क्या देख रहे हो ?···कोई तमाशा हो रहा है यहां ? जाओ ! अपनी-अपनी जगह जाओ।"

सहमते हुए वे सब गायब हो गए।

माला ने आंखें मूंद लीं।

"लुच्चा कहीं का !" कावेरी बड़बड़ाई।

"पर हुआ क्या था !" रत्ना ने पूछा।

"कुछ नहीं।" कावेरी बोली, "बताता है कि वह कुछ है। गुण्डा नहीं तो !·· इतनी जूतियां पड़वाती ससाले में कि···हां !"

रत्ना ने खाली दरवाजे की ओर देखा। चला गया है जगन्नाथ। मगर कोई कारण तो होगा, इस तरह मारपीट कर बैठे जगन्नाथ, यह अस्वाभाविक-सा लगता है। ज़रूर कुछ-न-कुछ हुआ है। रत्ना ने सोचा।

कावेरी ने कहा, "मैं अंगीठी जलाती हूं।"

"क्यों ?"

"सेंक के लिए।···वह छतरी देखती है ? इसीसे मारा है मरदुए ने !···हरामी !" कावेरीबाई बाहर चली गई।

माला उसी तरह आंखें मूंदे पड़ी है। रत्ना ने देखा, बांह पर लहू रिस

रहा है। काफी लम्बी खरोंच। निर्दयी जगन्नाथ!...इस तरह मारा जाता है?...और फिर वह मारनेवाला है ही कौन? वह उठी—प्राथमिक उपचार जानती है। छोटी-सी खरोंच पर भी डेटॉल लगा देना ज़रूरी होता है।

"कहाँ जा रही है?" माला ने करवट ली।

"डेटॉल लेने। तेरे खून आ गया है।" रत्ना जाने लगी।

"सुन!"

"क्या?"

"उसे देखना बाहर...कहाँ चला गया है?"

"किसे?"

"जगन्नाथ को, और किसे!"

रत्ना झल्लाई, "पागल है क्या!...उस कुत्ते को फिर से ढूँढ़ रही है जिसने मार-मारकर तेरा भुरकस निकाल दिया!"

"देख ले ना।"

रत्ना चली गई। थोड़ी देर बाद लौटी तो देखा, माला तम्बू के बाहर आ खड़ी हुई है।

"यहाँ क्यों निकल आई तू!"

वह भटकी-भटकी नज़रों से इधर-उधर देखती हुई बोली, "यों ही।"

"चल भीतर।" रत्ना उसे अपने साथ भीतर ले आई। खरोंच पर डेटॉल मला।

माला तम्बू के दरवाज़े की ओर देख रही थी—आँखों में निराशा और बेचैनी।

"क्या देख रही है?" रत्ना ने सवाल किया।

"कुछ नहीं।" उसने दृष्टि हटा ली। एक गहरी साँस।

रत्ना जानती है कि वह क्यों बेचैन है। उस पागल के लिए। वह भी तो एक तरह की पागल ही है। कण्डेरोंवाली अंगीठी सुलगा लाई। चारपाई के पास रखी, फिर तवा रखा और रुई के फाहे गरम करने लगी।

"कहाँ लगी है?" रत्ना ने पूछा।

माला ने बाईं तरफ का कूल्हा नंगा कर दिया। छाती का बैंड पूरा

का पूरा उद्धला हुआ था वहाँ। हल्की-सी सूजन! कावेरी ने फाहे रखने शुरू कर दिए। बड़बड़ा भी रही थी, "बदमाश!···हमारा ही दिया खाता है और···सूअर!"

पन्द्रह-बीस मिनट बाद ही सेंक का काम रत्ना के सुपुर्द कर कावेरी अपने तम्बू में चली गई थी। माला ने कहा, "अब बहुत हो चुका है। तू जा।···आराम कर।"

"मगर···" रत्ना ने कहना चाहा।

"अब कोई बात नहीं है।" माला ने उसके शब्द झेल लिए, 'तू आराम कर। जरूरत होगी तो फिर बुला लूँगी।"

रत्ना लौट आई। रात काफी हो चुकी थी। उसने तम्बू में आकर एक-दो जम्हाइयाँ लीं, करवटें बदलीं और सो गई।

सुबह जल्दी ही नींद खुल गई। झुरझुरा वक्त। एक झपकी और ले लेना चाहती थी, पर चाहकर भी नहीं ली। उठी और उनींदी-सी माला के तम्बू की ओर चली आई···चोट काफी आई है उसे। मालूम नहीं, ठीक तरह नींद ले भी सकी है या नहीं।

जगन्नाथ पर क्रोध आ रहा है। कुत्ता कहीं का! माला न तो उसकी घरवाली है, न रखैल···न उसका दिया खाती है। हिम्मत कैसे हुई उसे कि माला पर हाथ उठाए।···असल में माला की ही ढील है, न जाने कमबख्त जगन्नाथ ने कौन-सा वशीकरण मंत्र घोंटकर पिला दिया है उसे!···

तम्बू के दरवाजे का परदा उलटने ही वाली थी कि ठिठक गई। भीतर से फुसफुसाहटें हो रही थीं—साफ़-साफ़ सुनी जा सकती हैं।

कौन है?···शायद जगन्नाथ!···पर जगन्नाथ कैसे हो सकता है? वह तो रात को ही चला गया था। यह कहकर कि अब नहीं आएगा। मगर है वह जगन्नाथ की ही आवाज़···

पूछ रहा था जगन्नाथ, "तुझे ज्यादा चोट आ गई?"

"नहीं। थोड़ी-सी खरोंच···"

"मुझे गुस्से में बिलकुल ध्यान नहीं रहता है···"

"···"

बेशर्म कहीं का ! और माला भी अजीब है···रत्ना ने सोचा ।

"माला, मैं तुझे किसी और के पास कैसे देख सकता हूं ! ···तू ही बता कैसे···बस, उस हरामी को देखते ही मुझे गुस्सा···"

"···"

घरम से मैं तुझे नहीं मारना चाहता था ।···तेरी चोटें एक तरह से मुझे ही लगी हैं ।···"

"···"

"तू गुस्सा हो गई है मुझसे !"

"नहीं-नहीं । मुझे कुछ भी बुरा नहीं लगा ।" माला का उत्तर । देर बाद, पर किस कदर चाशनी में भीगा हुआ स्वर···

रत्ना समझ नहीं पा रही है कि यह क्या हो रहा है । जगन्नाथ का गालियां बकना, पीटना और फिर पुनः लौट आना···और उससे भी दस गुना आश्चर्यजनक व्यवहार है माला का । कहती है कि उसे कोई शिकायत ही नहीं है···उसे चोट भी नहीं आई है । साफ-साफ झूठ बोल रही है !

"बस, अब नहीं ! सारी रात तो हो गई है सेंक करते-करते ।" माला मना कर रही है ।

"नहीं, आराम पड़ जाएगा ।"

"नहीं । मेरी चमड़ी में जलन···"

"अच्छा-अच्छा ।"

तो जगन्नाथ उसके सेंक भी कर रहा है ! उन जगहों पर जहां उसने स्वयं चोटें पहुंचाई हैं !···पागल !···

रत्ना रुकी रहे या लौट जाए !

"अब तू सो जा !" माला की आवाज ।

"नहीं, तू सो जा । मैं तो सो लूंगा । मुझे करना ही क्या पड़ता है !"

"तेरी यही जिद तो मुझे पसन्द नहीं है । इसीलिए मुझे तुम्हार

चिढ़ हो जाती है।" माला कहती है।

वह हंसता है, "चिढ़ तुझे होती है और पीटता मैं तुझे हूं।···सच मुझसे भूल हुई। मुझे माफ कर दे!"

"किस बात की माफी!"

"मैंने तुझे चोट पहुंचाई है। तुझे मारा!"

"···"

"तू गुस्सा होगी, पर मैं तुझसे माफी···"

"नहीं, मैं गुस्सा नहीं हूं। मुझे अच्छा लगा है।"

"तुझे पिटना अच्छा लगा है!" जगन्नाथ के स्वर में आश्चर्य था।

"हां, अगर तू न पीटता तो मुझे गुस्सा आता।···कोई मर्द कैसे देख सकता है कि···तूने बिलकुल ठीक किया।"

"···अब जगन्नाथ चुप है।

"मैं खुश हूं—बहुत खुश हूं।" माला की उल्लासित आवाज़।

रत्ना लौटना चाहती है···नहीं लौटना चाहती। लगता है कि जगन्नाथ और माला अजीब हैं···पर यह भी लगता है कि वे अजीब नहीं हैं, सच्चे प्रेमी हैं। वह ज़्यादा से ज़्यादा उनसे सुनना चाहती है—उनकी बातें।

"···क्या? क्या बात है?"

"पानी···"

"मैं देता हूं पानी। तू लेटी रह। आराम कर।" जगन्नाथ उठता है। गिलास भरने की आवाज़···फिर उसकी अपनी आवाज़, "ले!"

वह पानी पी रही होगी।···रत्ना ने सोचा, फिर लगा कि उनके बीच पहुंचने का यही समय उपयुक्त है। तुरत परदा उठाकर सामने आ खड़ी हुई। जगन्नाथ और माला उसे हैरानी से देखने लगे। उतनी ही हैरानी से वह भी उनकी तरफ देख रही है।

जगन्नाथ बाहर चला गया।

"आ बैठ।" माला ने कहा और जब वह बैठ गई तब पूछा, "क्यों, बड़ी जल्दी जाग गई तू?

"हां, नींद नहीं आयी।" उसने माला का प्रश्न संक्षिप्त-सा उत्तर देकर

खत्म किया और विषय बदल दिया, "वह कब आ गया वापस ?"

"तेरे जाते ही आ गया था।" माला ने कहा।

रत्ना चुप। अब क्या पूछे। इस तरह जवाब दिया है जैसे इससे पहले कुछ घटा ही नहीं है।

थोड़ी देर दोनों चुप रहीं। इस चुप्पी के दौरान रत्ना उसकी ओर इस तरह देखती रही जैसे पहचानने की कोशिश कर रही हो। हर बार पिछला सोचा झूठ हो जाता है। समझती है कि माला को उसने पहचान लिया है, फिर भूल-सुधार करती है···फिर भूल-सुधार···और भूल-सुधारों का अनवरत क्रम···किसी बार माला पहचानी नहीं जाती।

क्या इस बार ही पहचानी जा सकेगी ?···शायद हां।···शायद नहीं ?···

"मुकुन्दराव कोई तारीख बता गया है क्या ?" माला ने पूछा।

"नहीं।" लजा गई रत्ना।

"हमें भी नहीं बता गया है।" माला ने कहा, "हो सका तो जगन्नाथ को भेजकर···वैसे आदमी अच्छा है। भला भी है, हिम्मतवाला भी। वरना वैसे लोगों के समाज में जाने की बात हम लोग सोच तक नहीं सकते।"

रत्ना चुप रही। माला तरह-तरह से मुकुन्दराव की तारीफ करने लगी है, पर रत्ना का जी हो रहा है कि वह माला की तारीफ करे··· जगन्नाथ की भी···सहसा वे उसे बहुत अच्छे लगने लगे हैं।

उसी दिन आ गया मुकुन्दराव। जगन्नाथ को भेजने की जरूरत नहीं पड़ी। उसके साथ चार-पांच लोग आए थे। सबके कपड़े ऐसे जैसे किसी समारोह में आए हों। और खुद मुकुन्दराव चूड़ीदार पाजामा और काली शेरवानी पहन आया था। सिर पर सफेद टोपी जगन्नाथ के जरिये माला तक खबर पहुंचाई। फिर माला रत्ना के पास गई, "वह आ गया है।"

"कौन ?"

"तेरा वही।"

रत्ना चुप। खड़ी रही हुई। बोझ से मारी।

माला ने कहा, "तू अपनी पेटी तैयार कर ले। कहता है कि आज ही..."

तभी जगन्नाथ आ गया। हाथ में चन्देरी की साड़ी लिए हुए। एक हाथ में छोटा-सा पैकिट। सामान रत्ना के सामने रखकर माला से बोला, "मुकुन्दराव कहता है कि अभी ही विठोबा-रखुमाई के मन्दिर में पहुंचना है। वहां सारा इन्तजाम हो चुका है। इसे जल्दी से कपड़े पहनवा दे!" उसने उत्तर की प्रतीक्षा नहीं की थी, तुरंत वापस चला गया था।

कावेरीबाई रूठी बैठी है। मुकुन्दराव, उसके साथ वाले लोग और जगन्नाथ मना रहे हैं। जो हुआ है, उसे भूल जाओ। अब अपने हाथों अपनी बेटी की डोली उठाओ।

कावेरी गुमसुम। थोड़ी देर बाद ही रत्ना विवाह के कपड़े पहनकर उसके सामने आ पहुंची थी। पलकें धरती की ओर। कावेरी उसे अपलक देखती रही। कौन कहता है कि संच की लड़कियों और कुलीन लड़कियों में फर्क होता है!...

माला साथ थी। बोली, "आई के पैर पड़ ले।"

रत्ना ने वैसा ही किया। कावेरी ने न चाहकर भी उसे सीने से लगा लिया। रो पड़ी।...हैरान देखते रहे थे लोग। पत्थर-दिल कावेरी को अचानक क्या हो गया है!...सोच भी नहीं सकते थे कि वह कभी रो भी सकती है। अण्णाजी और विमन एक किनारे खड़े हुए हैं—अण्णाजी ने कन्धे पर पड़ी तौलिया अपनी आंखों पर रख ली। एकदम पिता की तरह जी भर आया है...तरह क्या, पिता ही है। रत्ना उसके पैर छू रही थी।

कावेरी ने कहा, "मुकुन्दराव, तुम लोग दो मिनट बाहर बैठो। हम लोग भी मन्दिर चलेंगे।"

कड़वाहट घुल गई थी। कावेरीबाई सबको साथ लेकर मन्दिर में पहुंची थी। रास्ते में विरज और अण्णाजी को बाजार दौड़ा दिया था। लौटे तो सुहागसाड़ी लाए, कुछ जरूरी सामान। लान-श्लोकों के समय वर-वधू पर फूल बरसाए गए। कावेरी ने साकिट दिया। अंगूठी पहनाई। माला

ने पढ़ी, और जिसपर जो बना सो।

फिर परदेवाली गाड़ी आई···कांचघर की औरत के लिए परदेवाली गाड़ी ! ···रत्ना विश्वास नहीं कर पा रही थी।

वे सब उन्हें मुलताई से बाहर तक छोड़ गए—सीमा से बाहर ! राह-भर गुमसुम चले आए वे डोली के पीछे-पीछे। विदा होते समय एक बार फिर सब कस से गले मिले थे। आशीर्वाद के हाथ रत्ना की मांग पर घूमे थे···भर्राए गलों से अटक-अटककर निकले शब्द···

कावेरी ने कहा, "जो हुआ, सब भूल जाना !···भूल जाना कि तू कभी सच में थी।···मुझे भी भूल जाना ! ···वह सब जो तुझे याद दिलाए कि तू हमारेवाली है···अब तू कुछ नहीं है। सिर्फ मुकुन्दराव की पत्नी है। तेरी मांग में सिन्दूर है और गले में मंगलसूत्र···बाकी तेरे लिए कुछ भी नहीं है ?···"

रत्ना ने शब्द गले उतार लिए···जी कठोर कर लिया था—हां, सब भूल जाएगी ?···सब···

परदेवाली गाड़ी आगे बढ़ गई—सीमा पार। घुंघरुओं की झनक, पेटी की आवाज़ और तबले की थापें उससे दूर, बहुत दूर खिसक रही थीं। गांव पहुंचते-पहुंचते बिलकुल डूब गई थीं वे···

२

टिक्…टिक्…टिक्…

रत्ना चौंक गई। साढ़े तीन !…

मुकुन्दराव अचानक तेज-तेज खुर्राटे भरने लगा है। काश ! वह पहले इतनी गहरी नींद में सोया होता…रत्ना विश्वनाथ बाबा के मंदिर पर होती—बालाजी के साथ।

अब तक वहां क्यों रुका होगा वह ? चला गया होगा। रत्ना को लगा कि निर्जीव हो गई है…लाश !

अन्धेरा अब भी है और लौ अब भी उससे जूझ रही है—कितनी कमज़ोर लौ ! बिस्तरे के नीचे दबे कपड़े रत्ना को तरेंट पर चुभे—अब शायद हमेशा ही चुभते रहेंगे।

कांटा क्रमशः साढ़े तीने से आगे बढ़ रहा है—बालाजी के वक्त की ओर। चार बजे वह आवाज़ देता था—"पुड़िया !…" और रत्ना दौड़ पड़ती थी—इस तरह जैसे स्टेज पर थिरकी हो। छम…छन्…न्…न्…

हां, बिलकुल यही स्थिति होती थी मन की। ऐसा ही उत्साह। घुंघरू बजते, पर कोई सुन नहीं सकता था उनकी आवाज़। सिर्फ रत्ना सुन सकती थी…

पर अब कभी नहीं बजेंगे घुंघरू ! बालाजी को भी सदा-सदा के लिए खो चुकी है रत्ना। शायद अब वह पुड़िया देने भी नहीं आएगा।

दिल टूट गया होगा उसका। दिल के साथ-साथ विश्वास ! छलती है कम्बख्त !···कैसे समझा सकेगी रत्ना कि वह छल नहीं रही थी। शायद रत्ना को छल रहा है।···शायद वह सुनेगा ही नहीं। हो सकता है कि वह रत्ना की ओर देखे तक नहीं।···पर यह सब तो उस समय होगा, जब बालाजी आएगा।

और रत्ना जानती है कि अब बालाजीराव इस देहरी की ओर आना तो दूर, झांकेगा भी नहीं। आएगा तो शायद रत्ना के मुंह पर थूक जाएगा। कुछ मौन गालियां होंगी उसकी आंखों में, "कमीनी !···तूने अपनी जात दिखा ही दी।···मैं गरीब ही मिला था तुझे मजाक करने के लिए !···"

पर रत्ना कितनी अवश थी ?···

मगर कैसे समझाएगी अपनी अवशता ! ठीक तरह बात तो कर नहीं पाती। हर क्षण लगता है कि इधर से कुत्ता झपट पड़ेगा, उधर से झपट पड़ेगा और रत्ना के शरीर, कपड़े, उम्मीदें—सबके सब चिथड़ों की शक्ल में बिखर जाएंगे !

ऐसा ही है मुकुन्दराव का आतंक। न सिर्फ रत्ना पर, बल्कि बालाजीराव पर भी।

बालाजीराव ! हृष्ट-पुष्ट शरीर। चेहरे पर सूरज-सी कौंध। भरी जवानी। लम्बा कद-काठ···पर जब रत्ना की देहरी पर आता था तो लगता था कि सब कुछ सिकुड़ा हुआ है। शरीर किसी बिल में समाने को आतुर·· आंखें दबी हुईं···पुड़िया देने को बढ़ा हाथ···कांपता हुआ हाथ···

शुरू-शुरू में बालाजीराव का सिर्फ यही रूप देखा था रत्ना ने। उसे उसमें सिर्फ माली दीखता था। रोज़ दो नये पैसे की पुड़िया घर-घर पहुंचाकर पेट पालनेवाला माली···पर जैसे-जैसे रत्ना की ऊब शुरू हुई, वैसे वैसे रत्ना ने बालाजीराव के और-और रूपों को देखना शुरू कर दिया था···

बालाजी, जो चोर-नज़रों से उसे घूरता है। बालाजी, जो हाथ-पैरों की शक्ति में मुकुन्दराव से कई गुना ज्यादा है। बालाजी, जो ज़रा-सा ·· पाते ही कुछ भी करने को तैयार हो सकता है। बालाजी, जो रत्ना को सामने पाते ही एक सिहरन से भर उठता है···

...इस पत्थर की दीवारों में कैद पड़ी अपंग रत्ना के लिए बैसाखी बन सकता है···और अचानक एक रात उसने सोच लिया था—इस बैसाखी को काम में लेगी !···

और इस खयाल के साथ ही बालाजी उसे भाने लगा था।···बालाजी के साथ-साथ उसने और भी दसियों स्थितियां समझ ली थीं और पाया था कि हर मौका रत्ना के लिए उपयुक्त है। समय, व्यक्ति और साधन···

सब पूरी तरह उपयुक्त था। यह भी कि बालाजी रोज सुबह-सवेरे चार बजे आ जाता है। उस वक्त कोई नहीं जागा होता। सब तरफ सन्नाटा। सिर्फ बालाजी, उसकी आवाज और रत्ना···पुड़िया लेने के लिए उठती हुई।

यह भी कि रत्ना और बालाजी को लेकर अचानक सन्देह भी नहीं किया जा सकता !

यह भी कि रत्ना धीमे-धीमे फुसफुसाकर उससे दो-चार बातें कह सकती है···फिर रोज···फिर अपने मतलब की बात !

और सबसे ज्यादा उपयुक्त यह कि वह रत्ना पर जान छिड़क रहा है···रत्ना शुरू से ही समझ रही थी। उसी दिन से, जिस दिन पहली-पहली बार उसने रत्ना को पुड़िया दी थी।

खट्···खट्···

"आते हैं।···जरा रुको !···" रत्ना ने कुण्डी खोली थी।

बालाजी ने फूलों की पुड़िया आगे बढ़ाई। रत्ना ने ले ली।

बालाजी उसीकी ओर देख रहा था। रोज देखता था···रत्ना इस घर की बजाय सच में होती तो वह एक, दो, पांच—जितने का मिलता, टिकट खरीदता और फिर उसे देखता रहता···

रत्ना को उसका इस तरह देखना कभी पसन्द नहीं आया। पर धीरे-धीरे वह उसे रुचने लगा। दरवाजा खोलती और लगता कि बैसाखी खड़ी है। रत्ना, लंगड़ी रत्ना उसे कांख के नीचे दबाती है और अन्धेरा, लम्बा

रास्ता पार कर जाती है'''दरवाजा खोलते समय प्रश्नवाचक की तरह मन में बैठे हुए प्रश्न का जवाब पा जाया करता। जवाब यानी बालाजी''' बालाजी यानी जवाब ! एक ऐसा सहारा, जो रत्ना को जेल से निकाल-कर खुले आकाश के नीचे ले जा सकता है। इस लिहाज से बालाजी काम का आदमी था'''

बालाजी'''फूलों की पुड़िया हाथ में लिए हुए, सिर पर लाल तौलिया बांधे, कन्धे पर फूलों की झोलों टंगी हुई'''

पर उस दिन रत्ना मुसकरा दी।

वह मुसकरा रही है ?''''''बालाजी माला को ओर मुसकरा रही है ?'''रत्ना हंसिनी ! कावेरीबाई के तमाशे की जान !'''नहीं-नहीं, पटेल मुकुन्दराव की औरत'''वह कांपने लगा। लौट पड़ना चाहता था, पर अजीब बात ! बालाजी के भीतर एक और बालाजी था—सुलगता, और कसकसाता हुआ बालाजीराव। रत्ना का आशिक। वह नहीं भागा था। आश्चर्य और अविश्वास से उसकी ओर देखने लगा था।

वह सचमुच मुसकरा रही थी। चांदनी के बीच एक और चांदनी। बालाजी के भीतर आतिशबाजियां छूटने लगीं'''हां, सचमुच वह मुसकरा रही है और सिर्फ बालाजीराव की ओर मुसकरा रही है। उसने भी एक जवाबी मुसकराहट छोड़ दी थी।

रत्ना ने पलकें दबा लीं—बालाजी कलाबाजियां खाने लगा, भीतर ही भीतर। उसकी सांस जोर-जोर से चलने लगी थी'''

आज के लिए इतना ही काफी है !'''रत्ना ने भड़ाम् से दरवाजा बन्द कर दिया। फिर सचमुच मुसकराई थी वह। लग गया ठिकाने !''' रत्ना को सन्तोष हुआ। लगा कि बैसाखी उसके हाथ के बहुत करीब आ गई है। कल और करीब आएगी, परसों और'''फिर बिलकुल रत्ना के हाथ में !

दूसरे दिन दरवाजा खोलते ही रत्ना ने पाया कि वह मुसकरा रहा है। पुतलियों पर चमक। चेहरे पर भाव, जैसे सारी आकाश की चांदनी उसने अपने चेहरे पर समेट रखी हो। रत्ना समझ गई थी कि वह बे-तरह दीवाना होने लगा है। पुड़िया लेते वक्त रत्ना ने जानबूझकर उसके

हाथ से हाथ छुवा दिया था और वह [illegible]
है रत्ना···बस !

मडाम् !···दरवाज़ा फिर बन्द। एक और मंज़िल तय हुई।

तीसरे दिन, तीसरी मंज़िल···दरवाज़ा खोलते ही रत्ना की मुसकान—बालाजी को बांधती हुई।···दीवारें तोड़कर खुले आकाश के नीचे पहुंचानेवाला आदमी सामने है—संभावित आदमी रत्ना ने लौटकर एक नज़र आंगन में देखा। कोई नहीं था। फिर रत्ना की बुदबुदाहट, "तेरा लग्न हुआ या नहीं !"

बालाजीराव सिहरा। थूक के कई घूंट गले से नीचे उतार गया। कुछ न बोल सका। कितनी मीठी और झकझोरती हुई आवाज़ है रत्ना हंसिनी की !···

"बोल ना !"

"नहीं।"

रत्ना फिर से निरर्थक मुसकराई। लौटकर फिर आंगन में देखा—कोई नहीं है। पूछा, "क्यों नहीं हुआ !"

"हिह्-ही···ही···" वह हंसा।

मडाम् !···

चौथा दिन।

"कैसी लगती हूं मैं !"

वह थूक निगलता है। हकलाकर दो शब्द बाहर निकालता है, "अच्छी। बहुत···अ···च्छी !"

"तू भी मुझे···" (मुसकराहट)

"रत्नाबाई···"

"हां।"

"रत्नाबाई-ई-ई··"

"क्या है !"

"···कुछ नहीं।"

बैसाखी रत्ना के साथ में। दरवाज़ा बन्द किया—चली आई। अब सब ठीक हो गया है। जल्दी ही बातों का क्रम पैदा कर दिया था रत्ना

हाथ से हाथ छुवा दिया था और वह थरथरा गया···हां, यही तो चाहती है रत्ना···बस !

भड़ाम् !···दरवाजा फिर बन्द। एक और मंजिल तय हुई।

तीसरे दिन, तीसरी मंजिल···दरवाजा खोलते ही रत्ना की मुसकान—बालाजी को बांधती हुई।···दीवारें तोड़कर खुले आकाश के नीचे पहुंचानेवाला आदमी सामने है—संभावित आदमी रत्ना ने लौटकर एक नजर आंगन में देखा। कोई नहीं था। फिर रत्ना की बुदबुदाहट, "तेरा लग्न हुआ या नहीं !"

बालाजीराव सिहरा। थूक के कई घूंट गले से नीचे उतार गया। कुछ न बोल सका। कितनी मीठी और झकझोरती हुई आवाज है रत्ना हंसिनी की !···

"बोल ना !"

"नहीं।"

रत्ना फिर से निरर्थक मुसकराई। लौटकर फिर आंगन में देखा—कोई नहीं है। पूछा, "क्यों नहीं हुआ ?"

"हिह्-हो···हो···" वह हंसा।

भड़ाम् !···

चौथा दिन।

"कैसी लगती हूं मैं !"

वह थूक निगलता है। हकलाकर दो शब्द बाहर निकालता है, "अच्छी। बहु···अ···च्छी !"

"तू भी मुझे···" (मुसकराहट)

"रत्नाबाई···"

"हां।"

"रत्नाबाई-ई-ई··"

"क्या है !"

"···कुछ नहीं।"

बैसाखी रत्ना के साथ में। दरवाजा बन्द किया—चली आई। अब सब ठीक हो गया है। जल्दी ही बातों का क्रम पैदा कर दिया था रत्ना

ने। भुरभुरी सुबह में एक मादक खयाल की तरह वह बालाजी को काबू कर लेती।···वह बिलकुल काबू आ चुका था।

"मैं यह घर छोड़ना चाहती हूं!"

चौंककर बालाजीराव ने उसे देखा। दिल धड़कने लगा है। मकुन्दराव को वह भी अच्छी तरह जानता है। पटेल से सरपंच बन रहा है वह। आस-पास के चार-छह गांव उसकी मुट्ठी में हैं और बालाजीराव अदना-सा माली···रत्ना तमाशे की औरत नहीं है, सरपंच के माथे की टोपी है। बालाजीराव इस टोपी को उतारे···यह दुस्साहस कहां से लाएगा वह!···

पर रत्ना उसे हर तरफ से बांध चुकी है। कह चुकी है कि बालाजी उसे अच्छा लगता है···अच्छा लगना यानी प्यार होना।···बालाजीराव को टोपी उतारनी ही पड़ेगी मुकुन्द की। भले चाहे जितना बड़ा खतरा क्यों न हो!

"क्या सोच रहा है!" —

"कुछ नहीं!" वह फुसफुसाया, "सोच रहा हूं कि यहां से कैसे निकलेगी तू!"

"वह मैं बता दूंगी!"

ठीक!····चला गया था बालाजीराव। मोहक सम्मोहन में जकड़ा हुआ।

अगले दिन रत्ना ने कार्यक्रम बताया था। बालाजीराव ने कुछ संशोधन पेश किए थे और फिर उसके अगले दिन कार्यक्रम निश्चित हो गया था—विश्वनाथ बाबा के मन्दिर में ठीक बारह बजे!···

"ठीक?"

"हां, ठीक!"

अदाब!···

और रत्ना खुले आकाश की कल्पना में फिर से चारपाई पर आ बैठी थी···बस, एक दिन के आधे घण्टे और फिर मुक्त!···पालों की सुबह—घूमने से घर निकलने को सुबह!···

मुकुन्दराव जब सुबह उठेगा रत्ना नहीं होगी, सारे घर में

तलाशी···अब क्या किया जाए ?···मारोती और मुकुन्दराव दरवाजा बन्द कर सलाह करेंगे।···सारे गांव-खेतों में खबर फैल जाएगी—रत्ना नहीं है ! पटेल और होनेवाला सरपंच मुकुन्दराव दरवाजा बन्द कर फुस-फुस रो रहा है। वह, जो हर घर में, सारे खेड़े में भों-भों···करता हुआ अपनी मरदगी की डींगें मारता फिरता था। पागल कहीं का !

फिर खबर लगेगी कि आज देव के लिए फूलों की पुड़िया भी नहीं आई है···

"क्यों, बालाजी कहां मर गया ? ऐसा मान्दो हमें नहीं चाहिए ! पूजा-पाठवाले घर में पुड़िया रोज आनी चाहिए।"

"बालाजी गांव में नहीं है।"

"किधर मर गया ?"

"बस, नहीं है।"

"पर कल तो था। पुड़िया देकर गया था।"

"हां, कल तो रत्ना भी थी। पुड़िया उसीने ली थी।"

"आज दोनों नहीं हैं ?"

"हां !"

"ओह !···" माथा थाम लेगा मुकुन्दराव।

भाग गई रसाली ! तमाशेवाली औरत ! ऐसी औरत घर हो सकती थी भला ? वह साला मुकुन्दराव ही मूर्ख था। उसके सिर में घास भरी हुई है। तमाशेवाली औरत क्यों लाया था घर में ?

···और रत्ना देर तक कुछ घण्टों की कल्पनाओं का सुख लेती रही थी—क्रूर कल्पनाएं !···

···पर कितनी बोदी थीं वे कल्पनाएं ?

कल्पनाएं बोदी थीं, या रत्ना ने ही कायरपन दिखाया। जरा साहस से काम लेती और इस कांटों-भरी जिन्दगी से पार हो जाती !···पर रत्ना ने खुद ही अपने उजले रास्तों को कायरता के अन्धेरे से भर लिया।

मुकुन्दराव अब भी सरोटों में है—कुत्ता !

रत्ना ने अबके भींच लिए। घड़ी की ओर नज़र उठी। कांटा चार पर आ पहुंचा है— चार !···बालाजी के आने का वक्त, पर आज क्यों आएगा भला ?···न जाने कितनी रात तक विश्वनाथ बाबा के अंधेरे रास्ते पर भटकता रहा होगा···

खट···ट···खट्ट···खट् !···

रत्ना चौंक गई। घबराई भी। ऐसा कैसे हो सकता है ? बालाजी-राव ?···वह उठना चाहती थी, पर नहीं उठ सकी। बालाजी का सामना करने लायक साहस नहीं है उसके पास।

वह कुण्डी खटखटाए जा रहा है···इस तरह तो मालती या सन्तूबाई जाग पड़ेंगे। रत्ना को उठना चाहिए। वह उठी। जाकर दरवाजा खोल दिया।

बालाजी सामने है—बुत-जैसा। पुड़िया हाथ में और हाथ रत्ना की ओर बढ़ा हुआ। चेहरा बीमार-जैसा लग रहा है। पलकों पर भारीपन। निश्चय ही वह रात-भर भटकता रहा है।

रत्ना सह नहीं सकी उसकी दृष्टि। चुपचाप पुड़िया हाथ में ली। बुदबुदाई, "मुझे माफ करना। असल में वह···वह जाग रहा था।"

बालाजी ने कुछ नहीं कहा। मुड़ा और चला गया। थका हुआ-सा।

रत्ना चीखकर उसे बुला लेना चाहती थी—'विश्वास करो, बालाजी !···वह सचमुच जाग रहा था !···' पर व्यर्थ ! क्या रत्ना चीख सकती है ? दरवाजा खोले खड़ी रही थी। वह चला जा रहा था और फिर एक मकान की ओट में गायब हो गया···

अब कुछ नहीं है—बालाजी गायब ! सिर्फ अन्धेरा। यह अन्धेरा फैलता-फैलता रत्ना के दिलो-दिमाग में समा गया है। सिर्फ दिलो-दिमाग पर ही क्यों, सारे जीवन पर···बैसाखी टूट चुकी है। एकमात्र थी। अब कभी नहीं जुड़ेगी और रत्ना इन दीवारों के बीच हमेशा-हमेशा अपंग ही कैद पड़ी रहेगी।

वह पुनः चारपाई पर आ लेटी थी। मुकुन्दराव के खर्राटे कम होते-होते गायब हो चुके हैं। उसके जागने का वक्त हो रहा है। जागते ही बाहर निकल जाएगा—रत्ना की ओर बगैर देखे। उसी रत्ना की ओर बगैर

देखे, जिसे देखने के लिए पंडाल में घण्टों टकटकी लगाए बैठा रहता था।

कभी-कभी रत्ना विश्वास नहीं कर पाती है कि यह वही मुकुन्दराव है। पहली बार मे सीधा-सादा लगा था। दूसरी बार उसने महसूस किया था कि मुकुन्दराव बहुत झेंपू है और फिर लग्न के बाद उसने पाया कि वह एक बड़ी हवेली का पहरेदार कुत्ता है···तीनों व्यक्तित्व कितनी जल्दी-जल्दी बदलते गए थे। हर दूसरा व्यक्तित्व पहले को इस तरह गायब कर देता था, जैसे उससे पहले वाला कुछ था ही नहीं। अगर या तो सिर्फ रत्ना का वहम।···

इस वहम ने रत्ना को कितना छला? भली जिन्दगी जीने को आतुर रत्ना इतनी जल्दबाजी में सब कुछ करती गई थी कि संच से घर तक आने में उसे देर ही नहीं लगी···कावेरीबाई और माला ने अपनी ओर से बहुत-बहुत सावधान किया था, पर ऐसे हर वक्त पर रत्ना को वे शत्रु-सी दीखी थीं। उसने उन्हें ऊबड़-खाबड़ जवाब दिए थे और अब पछतावा कर रही है।

कमरे के पिछवाड़े में हलचलें होने लगी हैं। पशुओं के रम्भाने की आवाजें···सुबह तेज और अधिक तेज होती जा रही हैं। उढ़के हुए दरवाज़े में एक दरार शेष थी और वक्त गुजरने के साथ-साथ वह रोशनी की लकीर बनती जा रही थी···रत्ना को लगा कि वह और उसकी जिन्दगी उस लकीर से बहुत मिलती-जुलती है। घर की कल्पना रत्ना के लिए सच में रहकर रोशनी की ही थी, पर जब घर में पहुंची तो पाया कि सिर्फ लकीर है रोशनी की, शेष सब अन्धेरा!···

पहली-पहली बार जब रत्ना घर में आई तो कितनी खुश थी! इस तरह जैसे उसने एक सूरज दिल में उगा लिया है—भीतर की रत्ना को उस सूरज ने प्रकाशित कर दिया है!···एक लम्बे अन्धेरे के बाद उगा सुखदायी सूरज!

पगली रत्ना! सोच ही नहीं सकी थी कि हर सूरज सिर्फ प्रकाश-पुंज ही नहीं होता, अग्नि पुंज भी होता है। उसकी किरणें किसी अन्धेरे को रोशनी सौंपती हैं और किसी शबनमी बूंद को सुखा डालती हैं··· बिलकुल अस्तित्वहीन ही कर डालती हैं।

भी विश्वास नहीं कर पा रहा है और रत्ना भी इस क्षण जो कुछ घट रहा है उसपर विश्वास नहीं कर पा रही है। ऐसा नहीं है मुकुन्दराव! ···मुकुन्दराव—सीधा, सरल! यह आदमी जिसे हजारों की भीड़ में रत्ना ने एक अर्थ के साथ पाया है कि वही है रत्ना की खोज!···रहा नहीं गया था रत्ना पर।

"क्यों, क्या हुआ?" वह पूछ बैठी।

"ऐं?···कुछ नहीं। बस, यों ही।" मुकुन्दराव बगले झांकने लगा।

"कुछ तो?" रत्ना उसकी बेचैनी समझ रही है। शायद उसके कानों में घुंघरुओं के स्वर हैं···भीड़···तालियां···नंगी पिंडली···

"बस कुछ खास बात नहीं है।" मुकुन्दराव ने माथा रगड़ा, "मेरे सिर में दर्द है···"

रत्ना भूल गई कि यह पहली रात है। घरू औरत की पहली रात। बेचैन होकर कहा, "तो तुम लेट जाओ।···आराम कर लो यहां।" उसने पलंग पर किनारे होकर उसके लेटने के लिए जगह बनाई।

वह लेटा नहीं। आश्चर्य और अविश्वास से उसका चेहरा देखने लगा। एक बार फिर कोशिश···नहीं! झूठ सोच रहा है मुकुन्दराव। रत्ना सिर्फ घरू औरत है। सिर्फ मुकुन्दराव की औरत। मुकुन्दराव पहला मर्द है उसकी जिन्दगी में!

"लेट जाओ!"

"ऐं? हां-हां।" वह लेट गया।

रत्ना उसके माथे पर झुक आई और उसे सहलाने लगी। मुकुन्दराव की ओर बंधी दृष्टि। उसकी तबीयत खराब है, यानी रत्ना की तबीयत खराब है।

और मुकुन्दराव ने बेसबरी से कई बार पलकें खोलीं-झॅपीं। मंगलसूत्र नया है—उसके सीने से किरणें उठ रही हैं। चमकती और चमकाती हुई किरणें। ये किरणें सिर्फ मुकुन्दराव की ओर आती हुई। उसके सीने पर ऊपर ही तो लटक रहा है वह। मुकुन्दराव ने खुद को धिक्कारा। ...ही गन्दे सांचों में पड़ा हुआ है। रत्ना एक सीधी-सादी औरत ...मिट्टी···जो मंच के सांचे में ढलने से पहले ही घर-द्वार के सांचे

में आ गई है !

"ज्यादा दर्द है ?"

"एँ ?···हां, ज्यादा है।"

रत्ना ने माथा तेजी से रगड़ना शुरू कर दिया। कनपटियों पर रत्ना की मुलायम हथेलियों का दबाव। वह चुप पड़ा हुआ है—आंखें मूंदे। अन्धेरे में दो चित्र—एक-दूसरे पर रह-रहकर बनते-बिगड़ते चित्र ! एक—रत्ना, पैरों में घुंघरू, भीड़, भीड़ की ओर दबती पलक—हंसिनी !···दो—रत्ना, मन्त्र-श्लोकों की बौछार में घूंघट लिए खड़ी वधू, मुकुन्दराव सेहरा बांधे हुए, डोली-चढ़ी रत्ना—घरू औरत !···कौनसा चित्र सच है ?···निरन्तर बढ़ती जा रही ऊहापोह !

रत्ना ने पूछा, "दर्द कहीं और भी है ?" होंठों पर मुसकान।

मुकुन्दराव ने पलकें खोलीं। चेहरा बिलकुल रत्ना के चेहरे से नीचे। वह काफी झुक आई है···

"हां, पूछ रही हूं कि दर्द कहीं और भी है ?"

"मैं समझा नहीं।"

"ऊंह !···बुद्धू !···वह बोली। फिर माथा सहलाता हुआ हाथ मुकुन्द के सीने पर रख दिया, "यहां दर्द नहीं है ?"

मुकुन्दराव का सामान्य होता दिल जोर-जोर से चलने लगा—नहीं ! घरू औरत नहीं है ! सिर्फ रत्ना हंसिनी ! कानों में जोर-जोर से घुंघरू बजने लगे हैं।···इतने जोर से कि मुकुन्दराव को लगता है, परदे फट जाएंगे। वह बहरा हो जाएगा।

रत्ना गंभीर हो गई है। यह मजाक करने का वक्त नहीं है। शायद बहुत तकलीफ है उसे। उसने माथा रगड़ना फिर से शुरू कर दिया।

रात गहरी होने लगी थी···रात के साथ-साथ झपकें भी। रत्ना चेत उठती···रह-रहकर चेत जाती। फिर उठ पड़ी थी वहां से। खड़ी हुई एकटक उसे देखती रही। वह सो गया है···अब रत्ना को भी सो जाना चाहिए !···

हौले से पास ही लेट गई थी वह।

× × ×

सुबह वह कब उठकर चला गया—यह रत्ना को मालूम ही नहीं हुआ था। दिन को भी काफी देर तक गायब रहा था वह। रत्ना ने सोचा था कि कोई काम रहा होगा। सरपंच का चुनाव सिर पर आ रहा है। न जाने कितने बखड़े जान को लगे रहते हैं। वह घर के काम से उलझी रही थी। आश्चर्य यह था कि सखूबाई ने उसे रोका नहीं था—नई बहू है। काम के लिए उसे रोकना चाहिए। काम सारी जिन्दगी ही करना है। इन कुछ दिनों की मोहलत दे दी गई तो क्या अहसान हो जाएगा?···पर सखूबाई—उसका रुख ही अलग है। रत्ना ने दो-चार बार की बातचीत में ही समझ लिया। बड़े रूखे जवाब देती थी और इतने चढ़ते हुए शब्द बोलती थी कि रत्ना के सवाल की तह पर से ही गायब हो जाएं।

दोपहर आया था मुकुन्दराव। रत्ना उसकी प्रतीक्षा में भूखी बैठी थी। पर वह आते ही पैर धोकर रसोई में चला गया। सखूबाई थी वहां। सने उससे थाली परोसवा ली थी।

रत्ना थाली परोसने आ रही थी, पर देखा कि वह थाली रखे सामने ठा है। धक्का-सा लगा था उसे। यह तो विचित्र व्यवहार है?···

फिर एक नहीं, कई विचित्रताएं। हर बार रत्ना को यह साबित करने ी कोशिश कि वह एक घर औरत है। मुकुन्दराव को उसका पुराना- द्दला भूल जाना है और हर बार मुकुन्दराव के जरिये मिलनेवाला यह हसास कि वह रत्ना है। तमाशे की हमिनी! सीत्कारों, सीटियों, आहों भरी हुई नटनी!···

हर सुबह, शाम, हर घण्टे कुछ-न-कुछ ऐसा घटता आ रहा है जो ना को बार-बार यह स्मरण कराने लगा है कि वह गलत जगह आ गई । कौन है इस घर में जो यह अहसास नहीं दिला रहा है? मुकुन्दराव, रोनी, सखूबाई···सब के सब!

रत्ना शाम को शृंगार करती—शायद यही मुकुन्दराव को बांध ? ···सुबह से शाम तक घर के काम में रिमती। शायद इसी तरह ह मान ले कि रत्ना वह नहीं है—यह है। सच्ची रत्ना। पर व्यर्थ!···

पर रात वह रोशनी-भरे कमरे में उसकी प्रतीक्षा करती, और वह इस

तरह आता जैसे होकर भी नहीं है। बात उठती और वह उत्तरों में सिकुड़ने लगता। इतना सिकुड़ जाता कि न तो रत्ना यह समझ पाती कि वह क्या कह रहा है और न यह समझ सकती कि वह क्या कहना चाहता है।

उस रात भी वह आया। लेट गया। पलकें बन्द। कमरे में दो पलंग रखवा दिए हैं। दोनों के बीच खाली जगह। एक अंधेरी खाई-जैसी। उस दिन रत्ना ने सोच लिया था कि आज खाई पूरकर रहेगी। साफ-साफ पूछेगी। न होगा तो उबल पड़ेगी—क्यों?···क्यों हो रहा है ऐसा?···रत्ना का अपराध?

रत्ना ने पहले से ही पलंग जोड़ दिए थे। खाई गायब!···पर इस तरह खाइयां गायब होती हैं? पगली रत्ना!···

खाई थी यह कि वह पलकें मूंदे पड़ा है और रत्ना खोले हुए। वह थोड़ी देर उसकी ओर देखती रही थी—शायद यह सोचती हुई कि वह कुछ बोलेगा···

नहीं बोला वह। लाचार होकर रत्ना को ही बोलना पड़ा, "क्या, आज भी सिर में दर्द है?"

वह चुप।

रत्ना उसके करीब आ गई। बिलकुल सीने पर चढ़ने के लिए आतुर। सख्त आवाज़ में सवाल दोहराया और पूछा, "···सुनते हो, मैं क्या कह रही हूं?"

"क्या?" उसने पलकें मूंदे हुए ही सवाल किया।

"मैं पूछती हूं कि तुम्हें क्या हो गया है?"

"क्या हो गया है?"

"मैं तुम्हारी औरत हूं?···तुमने मुझसे ब्याह किया है!" रत्ना लगभग बिलख उठी।

"मुझे मालूम है।" उसने बहुत संक्षिप्त-सा उत्तर दिया।

रत्ना कुढ़ गई। जी हुआ कि रो उठे।

उसने रत्ना की ओर से करवट ले ली, "सो जा!···मैं बहुत थका हुआ हूं रत्ना।"

"तुम रोज इसी तरह···" रत्ना की आवाज भरनि लगी है, "
तरह मैं कैसे सहन करूंगी ?···कैसे ?···मैंने तुम्हारा क्या किया
है ?"

उसने करवट बदल ली—रत्ना की ओर। उसकी ओर देखा।
रोने लगी है। मुकुन्दराव के भीतर कुछ कुलबुला उठा—झूठ कहते
सब !···रत्ना उसी जगह के लिए है, जहां वह आई है। मारोती
सखूबाई, उसके नाते-रिश्तेदार, जात-समाजवाले सब झूठ कहते हैं।

"मैं तुम्हारे लिए अपनी मां, बहिन सब छोड़कर आई हूं···मगर तु
हो···" उसने सिर मुकुन्दराव के सीने पर रख दिया। जोर से रो
लगी।

हड़बड़ा गया मुकुन्दराव। हकलाते हुए बोला, "यह···यह क्या करती
है तू ?···रोती क्यों है ?···ऐसा क्या हो गया है।···कुछ नहीं हुआ।
चुप हो जा। चुप !···" वह रत्ना की पीठ सहलाने लगा। रत्ना हौले-
हौले चुप हो गई। मुकुन्दराव के सामने एक चित्र देर तक के लिए स्पष्ट
हो गया—घूंघटवाली रत्ना !···सिर्फ घरू औरत। वह उठा और उसने
रत्ना का रोता हुआ चेहरा अपने सामने कर लिया, फिर करीब···और
करीब···और···

रत्ना—तरसती, बहने को आकुल नदी-सी ठहरी हुई रत्ना अनायास
इस तरह वह उठी जैसे बांध टूट पड़ा हो। मुकुन्दराव की भी कुछ यही
दशा थी। वह भी उसी तरह फूट पड़ा था। बेचैन झरने-जैसा। वे एक
हो गए थे···खाई दूर !···शायद खत्म !

रत्ना ने समझा था कि खाई खत्म हो गई है। यही कुछ मुकुन्दराव
भी समझता था।···अपनी ओर से वे पाट रहे थे। पाट देना चाहते थे,
पर अचानक एक घटना हो गई—दूसरे दिन के दोपहर।

इस घर की छत से बिलकुल लगी हुई छत है—व्यंकटराव की।
जात-समाज में मुकुन्दराव की टक्कर का आदमी। एक उम्र, एक रुतबा-
मर्तबा। उसका मकान भी दोमंजिला है। पक्की छत, और छत पर

समझा कि वही है। उसने बोल गुनगुना दिए थे···सखूबाई ने चेहरा ऊपर उठा दिया था। नजर में बिजली की कौंध !···

और सखूबाई ने झाड़ू एक ओर फेंकी। आवेश में रत्ना के पास जा पहुंची, "हरामजादी !···कुतिया !···"

रत्ना हैरान। क्या हुआ है सखूबाई को? वह आश्चर्य से उसकी ओर देखती रह गई।

"तुझीसे कह रही हूं।" सखूबाई गरजी, "बता, क्या चक्कर है यह ?"

"कैसा चक्कर ?"

"यही व्यंकट वाला ?···"

"कौन व्यंकट ?" रत्ना ने कोशिश ही नहीं की है कि मुकुन्दराव के अलावा किसीका नाम जाने। तब यह व्यंकट···

"अच्छा, बनती है !···नटनी !···हमारे कुल में कोढ़ लगा दिया है मुकुन्द ने !···बड़बड़ाती हुई सखूबाई बाहर चली गई।

रत्ना अब भी अनजान है। बस, एक हल्का-सा शुबहा है मन में। कहीं व्यंकट वही तो नहीं है जिसने कंकड़ी···मुकुन्दराव के आते ही उसे बता देगी। इससे पहले कि व्यर्थ ही कोई तूल हो, रत्ना स्वयं ही सब बता देगी।

थोड़ी देर बाद ही मुकुन्दराव आ गया। मीटिंग से लौटा है, पिटा हुआ-सा। रत्ना ने एकदम कुछ कहना ठीक नहीं समझा। थका-परेशान आदमी घर लौटे तो थोड़ी देर राहत मिलनी चाहिए उसे। मुकुन्दराव ने आते ही आदेश फेंका था, "एक चहा बना दे !"

रत्ना चाय बनाने लगी थी। मुकुन्दराव का स्वभाव जानती है। क्रोध जल्दी आ जाता है उसे। इसलिए पड़ोसवाले आदमी की घटना इस तरह वर्णित करेगी कि वह कुछ उल्टासीधा न कर बैठे। सिर्फ उसे इतना मालूम हो जाए कि पड़ोसी बदमाश है—यह मुकुन्दराव की जानकारी में रहे।···

रह-रहकर सखूबाई की गालियां याद हो आतीं। न जाने क्या माजरा है! वह बहुत भुनभुना रही थी। अर्थ तो हो नहीं सकता उसका लिखना। चाय मुकुन्दराव को थमाई और पास ही धरती पर बैठ रही। उसके

चेहरे की ओर देखती हुई। कुछ कहेगा···यह भी हो सकता है कि कुछ न कहे। मालूम नहीं, मीटिंग में क्या हुआ हो। राजनीति की बातें हैं। मर्द उलझे रहते हैं। घर औरतों को इससे क्या करना? चुप बैठना उनका काम है। अगर कुछ कहेगा तो रत्ना जवाब दे देगी।

मुकुन्दराव ने कुछ नहीं कहा। चेहरे से परेशान लग रहा था। जरूर कुछ घट गया है। उसने चाय पीकर खाली प्याला एक ओर रखा, एक गहरी सांस ली और सिर ढीला कर कुरसी के पीछे लटका दिया। वह कुछ ज्यादा ही चिन्तित लग रहा था। रत्ना ने जूठा प्याला उठाया और धोने चली गई।

मुकुन्दराव कमरे में चला गया था। कपड़े बदलकर बाहर आया। थोड़ी देर आंगन में टहलता रहा। मारोतीराव मुलताई गया हुआ है। लौटा नहीं है। ऊपर झरोखे पर थोड़ी-थोड़ी देर बाद आकर सखूबाई लौट जाती है। जो हो रहा है कि इसी वक्त मुकुन्दराव को ऊपर बुलाए और शाम का किस्सा सुना दे···पर ऐसा किस्सा मारोती के सामने सुनाना ही ठीक होगा। एकांत में पर-मर्द के सामने कैसे वैसी बात कह देगी?

पर बात मन में उबलती ही जा रही है। सखूबाई पर उसे रोक पाना कठिन हो गया है। अब भी अपकट की वह मुद्रा और गीत दिमाग में उसी तरह बैठे हुए हैं, जैसे देखे-सुने थे···जरूर इस रत्ना ने उसे कुछ हवा दी होगी, वरना ऐसा कैसे हो सकता है कि वह इतनी हिम्मत कर ले!···और रत्ना के लिए वैसा करना क्या कठिन है? तमाशे की औरत! सारी जिन्दगी ही इन फनों में बनी है···यही फन तो था जिसने कुलीन और सामाजिक प्रतिष्ठा वाले ऊंची जात के मुकुन्दराव को फांस लिया। इन नटनियों का भी कोई चरित्र होता है भला!

मुकुन्दराव फिर से कमरे में समा गया था। पीछे-पीछे रत्ना।

कैसी गऊ-सी लगती है! दांत भींचकर सखूबाई ने सोचा। कितना छलती हैं तमाशेवालियां···यह छल घर में आ बैठा है। कुलवधू का रूप ···। सखूबाई को इस छल से भय भी लगने लगा है। यों सब कुछ है ···। अच्छा शरीर, गोरा वर्ण, गठन—सब। सिर्फ एक ऐसा ···हमेशा अनफस्ट रहती है। बचपन में कभी सीढ़ियों

से गिर पड़ी थी और ऊपर वाला होंठ चोट खाकर फट गया था। ठीक तरह संवर नहीं सका। अब भी उस फटे होंठ की जगह ऊपर की ओर उठान है और यह उठान सारे चेहरे को विद्रूप बनाए रहती है।

रत्ना को ओर जब-जब देखती है, तब-तब सखूबाई को अपने फटे होंठ और विद्रूप चेहरे का स्मरण हो आता है। इस स्मरण के साथ ही एक आशंका...क्या मालूम कि रत्ना किसी दिन मारोतीराव पर जादू फिरा दे !...तमाशेवालियाँ जादू ही करती हैं। और मारोतीराव इस मामले में बहुत कमज़ोर है। सखूबाई जानती है। ज़रा-सी डोर ही लटकी मिल जाएगी तो कंगूरों तक पहुंच जाएगा—मयूर की तरह उछलता हुआ। रत्ना का मतलब है डोर !...रेशमी और मज़बूत डोर ! विठोबा, बचाना मारोतीराव को !

रत्ना और मुकुन्दराव भीतर हैं। गप्पें कर रहे होंगे। कुछ कुढ़ते हुए सखू ने सोचा। फिर दूर गलियारे की ओर दृष्टि दौड़ाई—सुनसान पड़ा है। मारोती का दूर-दूर तक पता नहीं। हो सकता है कि वह आज न आए, कल सुबह लौटे।...तब तक शामवाली घटना कैसे दबाए रहेगी सखूबाई ?

उसे तकलीफ हुई। बातों के बुलबुले ऊपर तक आ रहे हैं—सीने में गड़ने लगे हैं। सारी घटना को कै कर देने की तबीयत हो रही है।... सखूबाई ने पुनः गलियारे की ओर नज़रें लगा दीं—हो सकता है, बस लेट हो गई हो।

शाम सघन होते-होते क्रमशः अन्धेरे में बदल रही थी। कच्चे रास्ते पर मटमैलापन बिछ गया है। ऐसा ही मटमैलापन सखूबाई के भीतर भी फैला हुआ है। यह मटमैलापन अचानक ही नहीं पैदा हो गया था सखूबाई के मन में, बल्कि इससे पहले धूल और आंधी के झोंके सहे थे सखूबाई ने...पहला झोंका उसने मारोती से ही सहा था। पहली रात ही वह कुछ इस तरह सखूबाई की ओर देखने लगा था, जैसे किसी घृणास्पद चीज़ को देख रहा हो...हां, फटा होंठ इसी तरह गड़ गया था मारोती की कल्पनाओं के नाज़ुक आकाश में !

समझ गई थी सखूबाई—हीनता के गहरे सागर में डूब गई।

मारोती ने भी कुछ नहीं कहा था, उसने भी। पर दोनों के बीच एक अदृश्य दरार पैदा हो गई थी। मारोती यथासंभव उससे कतराया रहता था और अगर सामने पड़ भी जाता तो सखू के चेहरे से नजरें चुराने लगता। अर्से तक यह चलता रहा था और इस सबके बीच उनके शारीर-सम्बन्ध एक-दूसरे के प्रति अन्यापन लिए हुए होते रहे थे। दोनों अलग होते तो एक-दूसरे से पराजित-भाव लिए हुए। कभी मारोती जल्दबाजी कर गया होता और कभी सखू। इतना सब हो जाने पर भी वे एक-दूसरे के सामने परदे डाले रहते। इस तरह जैसे सखू को उससे कोई शिकायत नहीं है और न मारोती को उससे कोई शिकायत है।···

पर कब तक चलती यह परदेबाजी!···उतर गया था परदा। किसी छोटी-सी बात को लेकर दोनों में कुछ कहा-सुनी हुई थी और बोल पड़ा था मारोती, "तेरी शक्ल की ओर देखने का जी नहीं होता है मेरा!"

सखूबाई कसमसाकर रह गई। और गहरा समुद्र। और गहरी डूब। और अधिक हीनता!

मटमैलेपन की ओर बढ़ता सखू का मन। उचाट होने लगा था सखूबाई का दिल। उस दिन बिलकुल उचाट हो गया जिस दिन उसने मुकुन्दराव को अपनी ओर कुछ विशिष्ट अर्थमयी मुसकान मुसकराते पाया। यह मुसकराहट सखूबाई ने गर्व के साथ अपने भीतर तक महसूस की थी। रतना नहीं थी उन दिनों। मुकुन्दराव खाली था। भरा बदन, रोबीला व्यक्तित्व। सखूबाई ने अनुभव किया था जैसे उसकी गमले में पड़ी हुई जड़ों की सूखी मिट्टी अचानक मुकुन्दराव ने गीली कर दी है।···भुर-भुरी!···

मारोती बाहर गया था। अक्सर बाहर जाता रहता था। लकड़ी के ठेके लेना उसका धन्धा।···और सखू के लिए उसका होना न होना बराबर। किन्तु उस दिन सखू ने महसूस किया जैसे कभी-कभी मारोती का न होना ही अच्छा है। वह मुकुन्दराव की ओर रह-रहकर देखने लगी थी—जवाबी मुसकानों में।

मुकुन्दराव के भीतर नसों में तनाव पैदा होने लगा। फटा होठ बड़ा अर्थ रखता है···सखू की बड़ी आँखें, ऊपर चिपटी हुई साड़ी, सुडौल

बदन। सीना बाहर को उभरता हुआ। उसने सूखे होंठों को जीभ फिरा-कर तर किया और उसके करीब जा पहुंचा। इतने करीब कि सखू के कूल्हे उसके अपने कूल्हों से छू गए!…करेण्ट!…सहसा मुकुन्दराव ने उसे चूम लिया और फिर कसकर बार-बार चूमने लगा। इस सबके दौरान सखूबाई चुपचाप उसकी बांहों में बंधी रही। उससे और-और सटती हुई, उसमें समा जाने का प्रयत्न करती हुई!…गमले की सूखी जड़…निर्जीव, अचानक हरी हो आई थी। और हमेशा हरी रहने लगी थी…मारोती बाहर जाता या जरा इधर-उधर होता कि सखू भीग जाया करती…बाद में महसूस होता कि ठीक नहीं है यह। पर उस क्षण वह कितनी असमर्थ होती है?…नहीं जानती।

मटमैलापन और-और बढ़ गया है…

और फिर मटमैलापन गायब हो गया। उसकी जगह अन्धेरे ने हथिया ली। सखूबाई इसके बावजूद खड़ी हुई थी। आश्वस्त हो चुकी है कि आज मारोती नहीं आएगा।…उसका जी हुआ कि हंस ले, ठीक उसी तरह जिस तरह मारोती के न आने पर गाहे-ब-गाहे अपने हरियाने के सुख की कल्पना में हंस लिया करती थी…पर आज नहीं हंस सकेगी!…कई दिनों से नहीं हंस पा रही है। महीनों से—तब से, जब से रत्ना यहां आ गई है!…

रत्ना!…उसने खयाल-भर के साथ जबड़े कस लिए। आज मारोती का न आना अखर रहा है। आ जाता और वह उसके सामने मुकुन्द को सुना देती कि जिसे तू तुलसी दल समझता है, वह मकोवे का पत्ता है!…जिसे आंख पर लगाने के कारण नजर चली जाती है!…

क्यों न मारोती की अनुपस्थिति में ही कह डाले सब! पर वह बात नहीं बनेगी जो सखूबाई चाहती है। वह चाहती है कि सारा घर एकसाथ जान ले कि रत्ना क्या है!…उसे सब अपमानित करें और फिर एक दिन वह इन देहरी-द्वारों से बाहर हो जाए!…

कल्पना के सुखद क्षण मे डूब गई है सखूबाई। रत्ना बाहर जा चुकी

होगी और उसके जाने के साथ ही फिर से मुकुन्दराव का स्पर्श···आलिंगन और मारोती का सुरक्षित रहना। हां, वह मारोती को भी चाहती है। वही तो है जिसके नाम पर सखूबाई सुरक्षित है। और वह एक ऐसे ढक्कन की तरह है, जिसके कारण भीतर के पदार्थ को क्षति नहीं पहुंचती। मारोती—एक ढक्कन, एक सुरक्षा-कवच ! और सुरक्षा-कवच की भी देखरेख ज़रूरी होती है। सखूबाई उसकी देखरेख करना जानती है।

बता ही दे !···सखूबाई ने पुनः सोचा। बात फिर से याद हो आई और स्मृति के साथ ही उसका उबाल ! प्रयत्न हो गई है। वह अधिक न सोचकर आवाज़ लगा बैठी थी, "मुकुन्द !···ऐ, मुकुन्दराव !"

मुकुन्दराव बाहर आ गया—आंगन में। झरोखे से काफी धुंधला दीखा वह। पूछा, "क्या है, वहिणी ?"

"जरा ऊपर आओ।" सखूबाई का आदेशपूर्ण स्वर।

मुकुन्दराव जाना नहीं चाहता था। अब वह बात नहीं लगती है सखूबाई में। फटा होंठ बार-बार गड़ने लगता है। तिस पर अभी, कुछ पल पहले वह रत्ना के मीठे स्पर्श में जकड़ा हुआ था। किन्तु सखूबाई का आदेश अस्वीकारने का साहस उसमें नहीं है। बोला, "अभी आता हूं।"

सखूबाई की आवाज़ सुनकर रत्ना दरवाज़े तक आ गई थी—समझ गई कि शामवाली घटना सुनाएगी। घटना पूरी तरह क्या घटी है, यह मुकुन्दराव नहीं जानता। न रत्ना ही। न जाने अपनी ओर से क्या कुछ बुन लिया है सखूबाई ने ? मन हुआ था कि मुकुन्दराव को रोक ले, पर इस तरह रोकना तो और भी घातक होगा ! जो कुछ गलत-सलत सुनाने वाली होगी सखूबाई, उन सब पर रत्ना के रोकने से मुकुन्दराव को विश्वास हो जाएगा। उसने उसे जाने दिया। लौटकर चुपचाप चारपाई पर आ बैठी।

कुछ पल पहले मुकुन्दराव के स्पर्श ने बदन में जो आंच सुलगा दी थी, अब ठण्डी हो चुकी थी। उसकी जगह एक भय उभर आया है—अर्थहीन भय !···बेबुनियाद !

भय ने बुनियाद ली। मुकुन्दराव ने लौटते ही प्रकट कर दिया कि क्या कुछ था। उसके नथुने क्रोध में फैल रहे थे। आंखों में हिंस्र कुत्ते-सा

बाद। बरबस पूछा था, "आप को क्या हुआ था ?"

"क्या !"

"बनती है !" मुकुन्दराव चिल्लाया, "वह बाँकड़ कैसे पहुँचा घर पर ?"

"मुझे क्या मालूम !" रत्ना सकपका गई। इसका मतलब है कि आप को भी अंबर ने वैसा ही कुछ किया होगा जैसा बोरकर किया था।"" और उसे सखूबाई ने देख लिया।

"मालूम कैसे नहीं है ?"

"मैं तो उसका नाम भी नहीं जानती थी, अभी तुमसे जाना है।"

"अच्छा !…और वह जो 'यो-यो रे पाहुणा' गा रहा था, सो !"

"…"

"जरूर तूने गजल बताई होगी, तभी तो वह गया गाना इस पर !"

"ऐसी बातें मत करो !" रत्ना बर्दाश्त नहीं कर सकी।

"अरे, जा-जा !…तुम नाची तमाशावाली औरतों की जात मैं खूब जानता हूँ !"

"जानते थे, तो मुझे लाए क्यों ?" रत्ना ने भी चिल्लाकर कहा।

"चुप !…" मुकुन्दराव ने झपटकर एक तमाचा जड़ दिया रत्ना के मुंह पर।

वह गिरते-गिरते बची। सारे शरीर में झनझनाहट ! मुंह में साड़ी का छोर भरकर रो उठी। मुकुन्दराव बड़बड़ाता हुआ ऊपर की मंजिल में चला गया—सखूबाई के पास।

ऐसे कैसे चलेगा ?…कब तक चलेगा ?…रत्ना देर तक अंधेरे में बैठी सोचती रही।

फिर वह रोज सोचने लगी।

धन-न-न्…! दुर्दम्य !…

मन में दबा हुआ सब कुछ उभर आया। वक्त ने थोड़े-से दिनों के लिए धुआं छोड़ रखा था उस सब पर। इस धुएं में रत्ना न तो खुद को ही देख सकी थी, न अपने पास-दूर के लोगों को पहचान पाई थी। सब कुछ धुंधला-धुंधला लगता था। और अब ?…अब सब कुछ उभर आया है…कावेरी-

बाई, माला, नीलकंठ, मण्णाजी, पंढाल, भीड़, बाहें…" हुईस्स् ! …हुईस्स्…!

दरार !…जिसे भरने की कोशिश की थी रत्ना ने। पगली ! ये दरारें इस तरह भरा करती हैं ?

देर तक रोती रही थी रत्ना और मुकुन्दराव ऊपर से नहीं उतरा और जब उतरा भी तो आकर चुपचाप सो गया था—बिना बोले ! क्या वह दोबारा नहीं पूछ सकता था कि मामला क्या है ? वह रत्ना को सफाई का मौका भी नहीं दे सकता था ?…वह इस सीमा तक अविश्वास करता है रत्ना पर ?…

वह खर्राटे भरने लगा था—कितना निश्चिन्त ! रत्ना के दर्द के लिए जरा भी पीर नहीं ? वह दिन गुजर गया था—डरावनी रात भी। सुबह से फिर वह कुछ दिनों पुराना मुकुन्दराव हो गया। अब उसे रो-धोकर नहीं बहलाया जा सकेगा। वह घर में रहता जरूर था, पर इस तरह जैसे एक मेहमान। बहुत कम बातचीत, बहुत कम सम्बन्ध। रत्ना विश्वास नहीं कर पाती है कि वह पति है। इसके विपरीत वह देखती है कि मुकुन्दराव का औसत वक्त सखूबाई या मारोती के पास बैठा रहता है। हालांकि इस सारे दौर में घर के हर आदमी की निगाहें रत्ना के इर्द-गिर्द पहरा देती होती हैं।

बहुत दिनों तक तो खुद को दबाए रही थी रत्ना। लगता था कि एक घुमां उसने अपने गिर्द इकट्ठा कर लिया है—पिछली से लेकर अब तक की जिन्दगी पर। किन्तु थोड़े ही दिनों में रत्ना समझ गई थी कि वह घुमां नहीं है। उसने जानबूझकर अपने इर्द-गिर्द एक परदा फैला रखा है—धीरज का। अभी नहीं तो शायद कुछ दिनों बाद मुकुन्दराव उसे समझ लेगा। धुंधल्कू डूब जाएंगे और उन्हींके साथ कावेरीबाई, माला, पंढाल…सब कुछ। पर मुकुन्दराव नहीं चाहता शायद।…वह बार-बार सब कुछ उभार देता है।

उस दिन कोई खास बात नहीं थी। उसके पीछे कारण भी नहीं था, लेकिन मुकुन्दराव ने एकदम कैसा रूप दे दिया था उसे ! वह दरवाजे से टिककर खड़ा था और रत्ना साग काट रही थी। उसने एक पैर फैला रखा

था, जिसपर कसाव में बंधी साड़ी उलटकर घुटने तक आ गई थी।

गरज पड़ा मुकुन्दराव, "तुझे शर्म नहीं आती!"

रत्ना ने चकित होकर उसकी ओर देखा।

"अरे, समझती नहीं है? बन्द कर साली को!" मुकुन्दराव और जोर से चिल्लाया, "टांग नंगी करके सारे जमाने को दिखाती है!" रत्ना ने सकपकाकर साड़ी पिंडली पर खींच ली।

"मैं तुझे कूड़े से निकालकर महल में ले आया। मेरी ही मिस्टेक हुई। हमारे यहां यह नहीं चलेगा। गांव-खेड़े में हमारी इज्जत है। हमारे घर की औरतों को इज्जत से रहना चाहिए।"

रत्ना हतप्रभ रह गई। यह इतनी बड़ी बात तो थी नहीं कि इतना भड़का जाए? मुकुन्दराव के देखने-सोचने में ही फर्क है। रत्ना क्या करे? वह कपड़ों में हो तो भी वह उसे बिना कपड़ों की देखता है। रत्ना आखिर क्या करे? रत्ना को उसके घर में घरवाली की तरह आए एक वर्ष से अधिक ही हो गया था, पर मुकुन्दराव ने उसे कभी घरवाली की तरह देखा ही नहीं। वह यही देखता है कि रत्ना 'तमाशा' के स्टेज पर नाच रही है और वह एक सामान्य दर्शक की तरह कपड़े फाड़कर उसके जिस्म का मुआयना कर रहा है। उसके शरीर को नजरों से निगले जा रहा है। पिंडली ढक ली थी रत्ना ने, फिर भी मुकुन्दराव भड़कता रहा, "इस बार तुझे छोड़े देता हूं! आगे से अच्छी औरतों की तरह रहने की आदत डाल!"

रत्ना सिमटी बैठी रही थी और मुकुन्दराव की जबान रुकी नहीं। बार-बार वह जो कुछ दोहरा रहा था, उसमें एक ही प्रतिध्वनि थी कि याद रख, रत्ना अब तू एक इज्जतदार औरत है। इज्जतदार घर की औरत है--ऐसे घर की, जिसकी दूर-दूर तक जात-बिरादरी में पूछ है। मुकुन्दराव छोटा-मोटा आदमी नहीं है। वह गांव का पटेल है, और पटेल या होनेवाला सरपंच ऊंची-ऊंची सभा-सोसायटियों में आता-जाता है। उसने रत्ना पर उपकार किया है। उसे कूड़े से निकालकर महल में ले आया है

× × ×

मुकुन्दराव को गहरी चोट लगी। पल-भर में सब भहराकर टूट गया। कितना विश्वास, कितनी आशा और कितने प्रेम से लाया था रत्ना को… सचमुच जब उसने निर्णय लिया, तब और सोच-विचार के साथ यही भावनाएं थीं मन में। लगता था कि रत्ना वीनस की मूर्ति की तरह है— निर्दोष! पर कितना सच होता है बूढ़े-पुरानों के सुझावों, विश्वासों और निर्देशों में!

मुकुन्दराव समझ रहा था कि उसने क्रांति की है। सामाजिक-क्रान्ति!…एक धनी-मानी वर्ग और कुलीन घर में किसी तमाशेवाली को ब्याह लेना क्रांति ही है। उसका खयाल था कि वह निश्चय ही एक उपलब्धि के रूप में रत्ना को ला रहा है—बेशक उसके लिए उपलब्धि ही थी रत्ना। ठीक कुछ इस तरह जैसे किसी गन्दे ताल से उगे कमल को स्पर्श किया जाए…

उस क्षण मुकुन्दराव को लगा था कि रत्ना कमल है…पर कितनी बड़ी गलतफहमी थी उसकी? जब रत्ना को लेकर आया तब कितनी टिप्पणियां और आलोचनाएं नहीं आई थीं उसके कानों में, पर उसने सबको बिसरा दिया था। भूल जाने की कोशिश की थी कि समाज के एक-एक व्यक्ति की आंख उसकी ओर लगी हुई है—रत्ना को घर में ले आया है! तमाशे की मटनी!…जंगली चिड़िया पाली है रमाले ने! ज़रा-सा पिंजरा खुला और फुर्र से उड़ जाएगी… —

उड़ी नहीं है रत्ना, पर उड़ने के आसार दीखने लगे हैं। सन्नूबाई की खबर अविश्वसनीय लगी थी। हो सकता है कि वह रत्ना से कुढ़कर बनावटी बातें बढ़ा-चढ़ाकर बयान कर रही हो, पर अब उसने स्वयं दो-चार शब्द पूछ तो यह समझते देर नहीं लगी थी कि कुछ है, और शायद वही है जो सन्नूबाई ने बताया है!…उतना नहीं तो उससे थोड़ा कम। पर है जरूर।…

वह टूट गया। इतना कि अब स्वयं जानता है कि कभी नहीं जुड़ सकेगा। चाहता है कि जुड़ा रहे, पर हो नहीं पाएगा। कैसे हो सकता है?

रत्ना से झगड़कर वह सन्नूबाई के पास चला आता था। सन्नू… उसकी भाभी—नाम की भाभी, पर सन्नू ने हमेशा निर्मल प्यार दिया है

रहे। उस रात भी उसीकी बाहों में उमरे हुए मुकुन्दराव को पाया था। पाया था और एक ऐसी शांति प्रदान की थी, जिसके लिए वह तरस रहा था। बर्फ की तरह ठंडा होकर वह नीचे चला आया था···रत्ना की ओर देखने तक की इच्छा नहीं हुई थी। उस रत्ना की ओर जिसे लाते समय उसने निर्णय किया था कि अब उसके और सखूबाई के बीच सिवा इसके कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा कि कभी कोई भूल उन्होंने की थी। अब दोहराव की जरूरत नहीं है।···

पर अब लगता है कि वह विचार मूर्खतापूर्ण था। सखूबाई ही है जो उसके तनाव को खत्म कर सकती है। उसके बिखराव को रोक सकती है और उसे समझ सकती है।

और रत्ना?···

महज मुकुन्दराव की भूल—सामाजिक भूल, जिसे निबाहना उसकी लाचारी है। धार्मिक, सामाजिक और व्यावसायिक।···व्यावसायिक इसलिए कि मुकुन्दराव राजनीतिक दृष्टि से रत्ना के भागने से दूर हो जाने का खतरा नहीं उठा सकता। क्या होगा, अगर किसी दिन रत्ना भाग गई और गाव-खेड़ों में खबर फैली?···एक होनेवाले सरपंच की औरत का भाग जाना, उसके सामाजिक और राजनीतिक महत्त्व को समाप्त कर देने के लिए काफी होता है। और मुकुन्दराव इस तरह की गलती करने को तैयार नहीं है। रत्ना यहीं रहेगी और उसी तरह रहेगी, जिस तरह मुकुन्दराव चाहेगा···हर क्षण एक पहरेदार की तरह रत्ना पर मुकुन्दराव, मारोती और सखूबाई की दृष्टि होगी···और यह दृष्टि है···यह सब जानते हैं। रत्ना भी जानती है।

३

मुकुन्दराव अब भी सो रहा है।

रत्ना देव की पुड़िया लेने के बाद आधा घण्टे के लिए बिस्तरे पर फिर से लोट आती है···सोटती है, पर नींद नहीं ले पाती। साढ़े चार बजे से घर का काम-काज शुरू हो जाता है। दस-पांच मिनट आगे-पीछे सखूबाई भी दुमंजिले से उतर आती है। एक नियमित क्रम···रात के जूठे बरतन साफ करना, पानी भरना, अंगीठी जलाना, उसपर चाय का पानी चढ़ा देना और दोरों के लिए नौकर को अपने सामने चीता या सानी की तैयारी करवाना। इस जमाने में नौकर भरोसे के नहीं रह गए हैं। करब और चीना के कमरे की चाबी सखू के पास है। नियम बना हुआ है कि नौकर को जितनी करब या चीना चाहिए, रोज कमरे से अपने सामने ही निकलवा दी जाए।

इतना सब होते न होते मुकुन्दराव की आंख खुलती है, मालती की भी। दोनों मुंह-हाथ धोते हैं, तब तक सखू और रत्ना मिलकर चाय-नाश्ता तैयार करती हैं।

बैठक में एक-दो लोग हमेशा मेहमानी करते रहते हैं। उनका भी पूरा-पूरा खयाल रखना होता है। फिर यह एहतियात भी बरतना जरूरी होता है कि घर की इज्जत और चलन कायम रहे। पादेदारी परम्परा से रही है। सखू उसकी आदी है, निबाह लेती है। रत्ना के जीवन में यह एक बिलकुल नया अनुभव था, अतः आदत डालने में कुछ देर लगी है।

वे चाय बनाने लगी थीं। मारोती दोमंज़िले से नीचे आ गया। उसकी आदत है कि उतरते ही संडास में समा जाता है, जबकि मुकुन्दराव कभी सीढ़ियों पर और कभी आंगन में एक कुरसी डालकर देर तक उनींदा-सा बैठा रहता है फिर कहीं संडास जा पाता है।

थोड़ी देर में मुकुन्दराव भी बाहर आ गया। वह सीढ़ियों पर एक बन्दर की तरह उकड़ूं जा बैठा और निरर्थक ही घर में नजरें दौड़ाने लगा। सखूबाई अंगीठी जला रही थी। मारोती संडास में था—रह-रहकर खांसता है। यह भी आदत है। खांसी हो न हो, वह खांसता ज़रूर है। फिर थूकने की आवाज़—'थुक्क!'

रत्ना आलू काट रही थी। पंचायत के चुनाव होनेवाले हैं। उस सिलसिले में रोज दो-चार आदमी मुकुन्दराव के बरामदे में टिके रहते हैं। मुकुन्दराव नेता है। वे आदमी मुकुन्दराव को मानते हैं और मुकुन्दराव उन्हें मानता है। आपसी व्यवहार बड़ी चीज है। उससे सारी दुनिया चलती है।

ये दो-चार आदमी यहीं खाएंगे। सखूबाई और रत्ना को मिलकर छह-सात आदमियों का खाना बनाना पड़ेगा। एक तरह से अकेली रत्ना को ही। सखू उम्र में बड़ी होने का लाभ उठाना जानती है। वह अक्सर आदेशों का सहयोग प्रदान करती है—बस!…

अगर बालाजीराव के कार्यक्रम में रत्ना कायरता न दिखाती तो आज फिर से यह जेल क्यों देखनी होती? वह सोच रही थी। आलू पर चाकू काफी वेग से चला…ध्यान ही न रहा। वह चौंक गई—चाकू ने अंगूठा चीर दिया था। एक रेखा की शक्ल में लहू की धार फूट पड़ी थी। उसने फुर्ती से चाकू नीचे रखा और घायल अंगूठे को चूसने लगी।

सखूबाई चाय तैयार कर और कप-केतली वगैरा एक बड़े थाल में सजाकर बरामदे की ओर चली गई थी। मारोती और मुकुन्दराव आए हुए मेहमानों के साथ-साथ चाय पिएंगे। राजनीति की बातें भी होती जाएंगी। वह लौटी। देखा कि रत्ना का अंगूठा कट गया है, पर नजर चुराकर अनदेखा कर दिया। कटा होंठ अधिक विकृत हो गया। रत्ना सखू की देवरानी है—क्या सचमुच वह देवरानी ही है?…रत्ना को अचरज होता

है। यह अचरज और अविश्वास रत्ना के मन में भी है। दोनों एक-दूसरे के लिए बहुत कुछ होकर भी कुछ नहीं हैं।

रत्ना अंगूठे को चूसती रही। बीच में उसने अंगूठा मुंह से निकालकर देखा—खून बन्द हुआ है या नहीं ? नहीं हुआ है। घाव काफी गहरा है। सोचते हुए उसने दोबारा अंगूठा मुंह में दे लिया।

मारोती बरामदे में है। वह कामचलाऊ दवाएं अपने पास रखता है। रत्ना मुंह में खून का गाढ़ा स्वाद अनुभव करती हुई सोच रही थी कि शायद बगैर पट्टी के खून बन्द नहीं होगा। वह उठ खड़ी हुई। बरामदे में जाने से पहले उसने सारे कपड़े देखभाल लिए। धोती को लाग सम्हाली, पल्ला सिर पर लिया।

बैठक के दरवाज़े पर पहुंचकर एक क्षण ठिठकी। वे बातें कर रहे हैं। अब ?···पर अंगूठे के घाव का कुछ न कुछ तो करना ही होगा। उसने कुण्डी की लगातार खड़खड़ाहट की। इसका मतलब होता है कि भीतर से बुलावा है। मारोती भी उठ आया, मुकुन्द भी। दोनों रत्ना के सामने।

रत्ना ने मारोती की ओर घायल अंगूठा बढ़ा दिया।

"कैसे लगा यह ?" मारोती ने चौंककर पूछा, "काफी लगा है।" बड़बड़ाता हुआ वह दोमंजिले पर चला गया और फुर्ती से दवाई का डिब्बा लेकर लौटा। रत्ना को सामने बिठाया और पट्टी करने लगा।

"कैसे लगी ?" उसने थोड़ी देर बाद सवाल फिर दोहराया।

"चाकू से।" कुछ असहज होती हुई रत्ना मुकुन्दराव की ओर देखने लगी। मुकुन्दराव उन दोनों को अरुचि से देख रहा था।

"चाकू से कैसे लगी ?"

"ऐसे ही। भाजी काटने में ज्यादा चल गया चाकू !" रत्ना बार-बार मुकुन्दराव की ओर देख रही है। अब तक सहानुभूति का एक शब्द भी नहीं बोला है वह।

"सावधानी से काम करना चाहिए।" मारोती कह रहा था और आशंकित रत्ना के हाथ कांप रहे थे। मारोती की पट्टी बांधती अंगुलियां उसकी कलाई को छू जातीं। वह जानती है कि मुकुन्दराव को रत्ना और

आदमी है जो रातों को जाग सका है या रातों पर पहरे बिठा पाया है ?···

मारोती ने बीच में दो-तीन बार उसकी ओर देखा और हर बार मुकुन्दराव को लगा कि उसकी नज़रें भाग रही हैं—कायर और चोर की तरह। ऐसा क्यों हो रहा है ?···इसलिए कि मारोती ने चोरी की है। चोर है ही वह !···

मुकुन्दराव ने चोरी नहीं की ? किसीने भीतर से उसे धिक्कारा। उसने तो और बड़ी चोरी की है। सगे भाई की पत्नी···वह कुछ उखड़ गया। फिर एक द्वन्द्व !···अपने-आपसे जूझ ! उसने खुद तो कुछ भी नहीं किया। वह तो सखूबाई स्वयं ही चाहती थी, तब मुकुन्दराव ही दोषी क्यों ?···

क्या ऐसा नहीं हो सकता कि मारोती भी उसकी ही तरह सोचकर अपने-आपको निरपराध पाता हो ? रत्ना ने पहल की होगी। और जब पहल रत्ना की हो तो मारोती ही क्यों दोषी माना जाएगा ?···

मारोती उठा। उन लोगों से विदा लेने लगा। हाथ जोड़े। बोला, "मुझे क्षमा करें, अब बैतूल जाना है। वहां जंगलात के आफिस में काम है।"

"क्या अभी ही जा रहे हो ?" मुकुन्दराव नहीं बोलना चाहता था, पर बोल गया।

"हां।"

"लौटोगे कब तक ?"

"दो दिन तो लगेंगे ही। तीन भी हो सकते हैं। नये ठेके का मामला है। टेण्डर के वक्त वहां रहना चाहिए।"

मुकुन्दराव चुप हो गया। जबड़े कस लिए हैं। वह भी बदला ले सकता है !···क्या मालूम मारोती ही उससे बदला ले रहा हो ?

मारोती चला गया था।

मुकुन्दराव ने बातचीत में आए हुए लोगों से मारोती की जगह ली। पर-गांवों के दो पटेल हैं। दोनों चुनाव में बड़ा रोल अदा करेंगे। दोनों हरिजन। दोनों की जातियों का अपने-अपने गांव में बहुमत है। मुकुन्द-राव उनसे दोस्ती निबाहता है। दोनों पूरे गांव के पंचों से समर्थन दिला-

एंगे और उसे बोर्ड का सरपंच चुना जाना है!... वे चुनाव कं उलझ गए थे। थोड़ी देर के लिए मुकुन्दराव भूल ही गया रत्ना का पति है, या रत्ना उसकी पत्नी है...या मारोती ने रत्ना के अंगूठे पर पट्टी रखी थी!

पर बहुत देर नहीं भूले रह सका मुकुन्दराव। शाम को ही फिर से उसकी आशंकाएं उसे मथने लगी थीं। बिस्तरे तक गई। बिलो डाला बिलकुल!...

"मारोती भाऊ से ज्यादा बातचीत करना मुझे बिलकुल लगता है!" *बिस्तरे पर आते ही उसने रत्ना को चेतावनी दे*

रत्ना क्या कहती। मारोती—मुकुन्दराव का बड़ा भा जेठ। पांच-छह घण्टों के लिए तो हर उस दिन घर पर रहता ह *दिन वह गांव में हो। कब तक उससे न बोला जाएगा? रत्न* सहानुभूतिपूर्ण रुख भी है उसका। एक बार बोला था, " लगता है कि एक गुड़िया घर में आ गई है!"

रत्ना को मुकुन्दराव पर क्रोध आया। हमेशा कांटा ही पा है मन में। उसने मुकुन्दराव की बात अनसुनी कर दी। इसीमें स है। कुछ कहती तो शायद झगड़ ही पड़ता। उसे स्वयं पर भी *होने लगा है*...

उसके मौन ने मुकुन्दराव को बढ़ावा दिया हो, इस तरह वह "समझी या नहीं! मारोती भाऊ से ज्यादा चबड़-चबड़ म कर!... वह मुझसे छोटा नहीं है। कोई *बाहरवाला* देखेगा त मन में क्या सोचेगा?"

"*क्या सोचेगा?*" रत्ना ने आंखें तरेरीं। *वह कभी नहीं चा* ऐसा मौका आए, पर मुकुन्दराव बार-बार कुरेदता है तो आग ही है।

"खराब सोचेगा।"

"क्या खराब?"

"बहुत खराब !···मारोती भाऊ मुझसे बड़ा है।"

"और घरों में क्या बड़े भाई नहीं होते ?"

"होते हैं।"

"फिर ?"

"पर···" मुकुन्दराव कुछ हिचका, फिर उसने कह ही दिया, "···होते हैं, पर और घरों में हमारे घर की तरह तमाशेवाली औरतें नहीं होती हैं !"

सुलग गई रत्ना। गुर्राकर कहा, "क्या हरदम तमाशावाली, तमाशावाली मचा रखा है। सब की औरतें क्या औरतें नहीं होती हैं ?"

"होती हैं, पर वे सिर्फ औरतें होती हैं। और घरों में मां-बहिनें और भाभियां भी होती हैं।"

"जिन्हें बहन-बेटी में फर्क करना नहीं आता, वही इस तरह कहते हैं।"

"मैं तुमसे जबान लड़ाने के लिए नहीं, जबान बन्द रखने के लिए कह रहा हूं।" मुकुन्दराव ने घुड़की दी।

"मैं तुम्हारी गुलाम नहीं हूं।" वह चिल्ला पड़ी थी। अब नहीं सहा जाता।

"तू तो क्या तेरा बाप भी मेरा गुलाम है ! तुम स्साले सब पैसों के गुलाम हो !"

रत्ना रो पड़ी थी—काश !···बस रात वह निकल ही गई होती।···

मुकुन्दराव बड़बड़ाने लगा, "हरामजादी ! औरत बनती है—यह औरत ! लोक-लाज कुछ है नहीं। बेशरम, जात-समाज में कोई मानेगा कि यह भली औरत है ! तमाशे की औरत !"

"भरोसा नहीं था, तो ब्याह क्यों किया ?" रोते-रोते वह बुदबुदाई।

"मिस्टेक हुई !···मुझसे मिस्टेक हुई !" मुकुन्दराव ने कहा, हालांकि भीतर से उसने महसूस किया कि यह उत्तर, उत्तर नहीं है—सिर्फ भरमाहट है। अचानक वह अपने मर्द होने के विशेषाधिकार पर उतर आया, "हमारा मुंह मत खुलवा ! जैसा तुमसे कहा है, वही करनी

जा ! बस !"

चुप हो गई रत्ना। चुप रही और जागती रही। वह भी जाग रहा था। दोनों के जागने में अन्तर यह कि वह करवटें बदल रहा था…और रत्ना पड़ी थी एक करवट ! लावे की जलन सहती हुई। मन हुआ कि सन्देह में डूबी मुकुन्दराव की आँखें नोच ले। इतनी आग रत्ना को कभी नहीं लगी। धुंधले विद्रोह के एक सिलसिले के बाद आज वह स्पष्ट विद्रोह कर रही थी। उसके दिमाग में पूरी झनकार के साथ घुंघरू गूंजने लगे थे, वेणी की खुशबू याद आ रही थी उसे…कावेरीबाई का चेहरा हर कठोरता के बावजूद गुलाब के फूल की तरह मुलायम, महक-दार और चमकीला लग रहा था। सचमुच तमाशे की जिन्दगी ही कुछ और थी। कितनी खुली-खुली, कितनी रस-भरी, कितनी बहुरंगी ! और यहां ?…

यहां उसे घर से बाहर भी नहीं जाना है। जूड़े में फूल नहीं लगाने हैं। खिड़की से बाहर झांकना नहीं है। मारोती से बोलना नहीं है। आंगन में ज्यादा घूमना नहीं है। पड़ोस के घर की ओर देखना नहीं है।…कुछ नहीं करना है उसे ! सिवा इसके कि हर रात मुकुन्दराव के करीब आ सोए। मुकुन्दराव उसकी इच्छा होने पर भी उससे घिनौनी छिपकली की तरह आ चिपके, अल्सेशियन कुत्ते की तरह सूंघे…घुर…घुर…घुर, हुफ्फ !…अंधेरे के बावजूद दीवार पर दो आँखें टंकी हुई हैं। चमकती हुई खूंख्वार आँखें !…वे उसकी ओर देख रही हैं। खिड़की, दरवाजे, रत्ना और उसके इर्द-गिर्द…लाश की रखवाली करती आँखें—

घुर्रर्रर्र…इधर नहीं देखना है !

हुफ्फ !… हुफ्फ !… इधर भी नहीं !…

हूं-ऊं-ऊं…उधर भी नहीं !…

रत्ना का मन हुआ, दौड़ती हुई कावेरीबाई की 'तमाशा कम्पनी' में जा पहुंचे। माला के सीने पर गिरकर रोए और चीखे—'तू ठीक कहती थी…पीने का पानी अलग होता है, नहाने का अलग !… हम लोगों की जिन्दगी यही है !…'

उसे पुराना सब कुछ याद आने लगा। सब ! प्रिय, सुभावना और

आकर्षक ! संच का हर पहलू ! एक बार झगड़ा हो गया था माला को लेकर। दरोगा औरों के साथ माला को भी पकड़कर ले गया था। कावेरी-बाई उसे छुड़ाने गई थी। साथ में रत्ना। बड़ी मिन्नत-आरजुओं के बाद छूटी था माला। रत्ना ने वहां देखा था कि थाने की हर दीवार पर इसी तरह की पहरेदार आंखें चिपकी हुई थीं। माला को हवालात में बन्द देखा था उसने। मोटे-मोटे सींखचे माला के सामने थे। आस-पास दीवारें। उसके जाते वक्त थानेदार ने बेंत हवा में घुमाया था, "हरामजादी !··· आगे से फिर कभी···"

रत्ना ने देखा कि मुकुन्दराव करवट बदल रहा है। बड़बड़ाता है, "हरामजादी !···आगे से फिर कभी···"

दरोगा—माला के लिए !

मुकुन्दराव—रत्ना के लिए !···

पर माला छूट गई थी जेल से।

और रत्ना बन्द है ! खुद आकर बन्द हुई है। पगली ! मोटे-मोटे सींखचे, दीवारें, चौतरफा घूमती हुई चमकीली और डरावनी आंखें···

इन आंखों की पलकें झपकती हैं—सुबह !···मुख्य द्वार पर बाला जी की आवाज···और रत्ना का जाना। सिर्फ एक वही वक्त होता है, सिर्फ वही एक आदमी !

किन्तु रत्ना अब उसे विश्वास दिला सकेगी ?—खोया हुआ विश्वास ! शायद कभी नहीं दिला सकेगी। देख लिया था उसका रुख। संभवतः बालाजी यह रुख बताने के लिए ही आया था और बता गया··· यह कि अब रत्ना के छलावे में नहीं आएगा वह।

रत्ना ने एक गहरी सांस लेकर करवट बदलनी चाही, पर रुक गई। उसने देखा कि मुकुन्दराव उठ खड़ा हुआ है। वह अंधेरे में बिलकुल रत्ना की चारपाई के करीब खड़ा हुआ था। एक सिहरन हुई रत्ना के शरीर में। किसलिए खड़ा है ?···हो सकता है कि वह किसी दिन रत्ना का गला ही दबा दे। ऐसी घटनाएं होती रहती हैं। रत्ना ने सुना है।

दबा ही दे तो छुट्टी हो !··· उसने सोचा। पर कितना ऊलजलूल सोचने लगती है वह। उसने देखा कि मुकुन्दराव दबे पांव बाहर जा

रहा है। कहां जा रहा है? ···शायद पेशाब करने! पर इस तरह चोर-भाव से?

वह धीमे से दरवाजा उढ़काकर आंगन में चला गया था। रत्ना हैरान थोड़ी देर सोचती रही। जरूर वह पेशाब करने ही गया है। अभी लौटेगा।

मिनट दो-चार···लगभग दस मिनट बीत गए। इतना वक्त तो लगता नहीं है। वह चकित हुई फिर, आखिर······रत्ना को देखना चाहिए। वह उठी। आंगन में चली आई।

आंगन में सन्नाटा था। कहां है मुकुन्दराव? थोड़ी देर वह चकित-सी खड़ी रही। एकाएक वह चौंकी। सामने दीवार पर रोशनी गिरी और गायब हो गई।

पर ऐसा कैसे हो सकता है? वहां मुकुन्दराव क्यों जाएगा भला?

मगर और जा भी कहां सकता है? रोशनी का यह टुकड़ा निश्चय ही ऊपर भाभीजी के कमरे से गिरा था···भाभीजी है नहीं और मुकुन्दराव वहां?

सिर्फ सखूबाई है वहां।······और आधी रात······और मुकुन्दराव गया है!

नहीं-नहीं! कितना गंदा सोचती है रत्ना। सखूबाई भाभी है मुकुन्दराव की। फिर ऐसा है भी क्या सखूबाई में कि मुकुन्दराव···

इस सबके बावजूद अब रत्ना विश्वास करने को तैयार नहीं है। सब कुछ सामने है फिर कैसे रत्ना अविश्वास करे? वह स्वयं देखेगी सब।

उसने यंत्रचालित पैर ऊपर की मंजिल की ओर बढ़ा दिए। सीढ़ियों का अन्धेरा बड़े सधे हुए कदमों से पार किया और गैलरी में पहुंच गई, फिर खिड़की के पास। सखूबाई का कमरा यही है। यहीं सोती है।

फुसफुसाहटें···रत्ना ने कान दीवार से लगा दिए—भीतर की ओर केन्द्रित।

वे फुसफुसा रहे थे। रत्ना साफ-साफ सुन पा रही है। सन्नाटे में बहुत दबा हुआ स्वर भी स्पष्ट सुनाई देता है। उनका स्वर स्पष्ट था।

"सखू! ···मैं उस हरामजादी के चक्कर में तुझे भूल गया था। तुम

सी प्रेम करनेवाली औरत को !···

"देर से सही पर तू मुझे समझ गया है। मेरे लिए यह काफी है।"
तू की आवाज।

चुड़ियों की खनखनाहट···कुछ चीत्कारें दबी हुईं।

रत्ना के सारे शरीर में फफोले उभर आए। ओह !···कितना
गित ! क्या ऐसे ही होते हैं घर और घरू औरतें ?···तमाशे से भी
धिक विद्रूप और घिनौने हैं ये इज्जतवाले लोग !···

"इधर···इधर जरा मेरे पास···हां, और !···आह !···" मुकुन्द-
ाव की बेशर्म आहें···

सखू हौले से हंसी।

कितनी गंदी और गीली हंसी ? रत्ना के माथे पर जोर-जोर से घन
रसने लगे हैं। कभी नहीं सोचा था उसने कि ऐसा भी होगा। सोच ही
हीं सकती थी ! यह कुंठा और है कि वह एक सस्ते समाज से आई हुई
औरत थी और यह कुंठा भी और थी कि मुकुन्दराव उसपर विश्वास नहीं
कर पा रहा था, किन्तु यह कि वह छली भी जा रही है और छल रहे हैं वे
जो इज्जत, समाज, घर-गृहस्थी का समाज-रथ चला रहे हैं, रत्ना के
लिए सबसे ज्यादा कष्टदेह बात है !

वे कुत्तों की तरह एक-दूसरे को झिंझोड़ने लगे हैं। सखूबाई और
मुकुन्दराव ! अंधेरे में तेज गर्म भाफ की तरह उठकर रत्ना को घोंटते
हुए उनके स्वर···

"आह !···मुकुन्दराव। तू कितना अच्छा है। मैं तो तरस गई थी
बिलकुल !···"

"और तू नहीं है अच्छी !···अच्छी !··· हुंह !"

"ओह !"

और निरंतर हांफें···

रत्ना लौट पड़ी। अधिक देर तक रुके रहने की ताब नहीं है।
इज्जतदार और लोक-लाजवाले लोगों के बीच एक तमाशे की औरत !
वह चुपचाप चारपाई पर आ गिरी थी। समझ में नहीं आ रहा था कि
दिमाग को क्या हो गया है। एक रुकी हुई घड़ी की तरह बन्द ! एक

ठहरा हुआ कांटा—मुकुन्दराव !···एक और ठहरा हुआ कांटा—रत्ना !···नहीं, सखूबाई।

देर तक पड़ी रही थी वह। दिमाग वही बन्द घड़ी। सब कुछ सपाट···एक मटमैले, उदास और तपते हुए रेगिस्तान की तरह।···

रात का दूसरा पहर धीमे-धीमे गायब हो रहा है···

फिर पहर गायब हो गया था और मुकुन्दराव प्रकट हुआ। दरवाज़े को उसने उकसाकर खोला। एक बहुत हल्की चरमराहट हुई, और फिर चोर-कदम रत्ना की चारपाई के करीब आकर वह थोड़ी देर खड़ा रहा। रत्ना ने आंखें मूंद लीं। न भी मूंदती तो वह उसके निश्चेष्ट पड़े शरीर से निश्चिन्त रहता कि वह सो रही है। फिर वह एक लाश की तरह अपने बिस्तरे पर पड़ गया···

रत्ना का जी हुआ था कि उठकर उसके मुंह पर थूक दे। गालियां बके और उलाहना दे कि तुम्हारी घरू औरतों से तमाशे की औरतें कहीं अधिक भली हैं !···कई गुना शरीफ !···उनकी जिन्दगी एक साफ-सुथरे ढंग से बीतती है। सब कुछ कांच के गिलास-सा। जिस रंग का पानी होगा, वह उजागर ! और तुम्हारे घर—आबरूवाले घर, गन्दे पानी की मोरी जैसे, जिसके ऊपर सफेद चमकता हुआ पत्थर रखा रहता है और भीतर सड़ांध !···

पर कह नहीं सकी। भला आवाज कर सकती है कोई रुकी हुई घड़ी ?

मुकुन्दराव आवाजें करने लगा—हूं···हूं···हफ्फ्···पुर्रर्र···पुर्रर्र···

कमीना ! अचानक चलने लगी थी घड़ी। बेवक्त, बिना मिली घड़ी। रत्ना, बेवक्त समय से न जुड़ सकी घड़ी। सखूबाई, मुकुन्दराव, मारोती, रत्ना, बालाजी, कावेरी···न जाने भीड़ के भीड़ इकट्ठा होते चेहरे और सब गड्डमड्ड ! और इस सबके बीच एक अकुलाहट—क्या करे रत्ना ?···क्या करना चाहिए ?···

सब निरुत्तर ! अपने-आपसे निरुत्तर रत्ना ! अवश ! छटपटाती हुई ! असमर्थ ! कैदिन !

उसने करवट बदली···बार-बार बदलने लगी। शायद यही है रत्ना के वश मे। एक ऐसी घायल मछली, जो समुद्र में है पर तैरने से लाचार। छटपटाती है और और-और गहरे समुद्र मे उतरती जाती है। उतरती ही आ रही है···

अंधेरा···सन्नाटा और सन्नाटे को चीरता टिक्···टिक्···टिक् घड़ी का स्वर।···

इस स्वर के साथ सागर मे उतरती जा रही घायल मछली। क्रमशः गहरा होता जाता समय। अवश रत्ना! लाचार!

मुकुन्दराव के खर्राटे उसी तरह चल रहे हैं। बीच-बीच मे कम हो जाते हैं और फिर अचानक तेज······

रत्ना के कानों में अब भी फुसफुसाहटें हैं। मुकुन्द और सखूबाई के विलास के कीचड़ मे लिपटी हुई घिनौनी फुसफुसाहटें···इन फुसफुसाहटों के साथ बीच-बीच में संच के घुंघरू। कितने निर्मल और संगीतमय··· कैसी गंगा-सी पवित्र गीत-लड़ियां···

रत्ना ने खुद को कितना छला? एक चमक की तरफ दौड़ पड़ी—और चमक पास आने पर कितनी दुर्गन्धयुक्त। चांद की दूर से दिखती दुनिया और पास पहुंचकर समझी और पहचानी जानेवाली असलियत। जीवनहीन संसार!···

संच! बदनाम होकर भी कितनी नेक-पाक औरतों का संसार!···

घर!···चांद का जीवनहीन संसार। दूर का छल!

मन होता है कि किसीके सामने फूट-फूटकर रोए। मुकुन्दराव की शिकायत करे, उसके नाम जी भरकर गालियां बके। वह सब जो लावे की तरह भीतर ही भीतर धधक रहा है, उगल डाले! पर किसके सामने? एक प्रश्नचिह्न उभर आया मन मे। मारोती के सामने? मुकुन्दराव के या सखूबाई के? इनमें से किसीके सामने नहीं। लेकिन इनके अलावा तो इस घर में कोई है भी नहीं!

कावेरीबाई? माला? उसने उत्तर खोज लिए, पर इन तक पहुंचा

कैसे जाए ? इन दीवारों को वह अकेली तो फांद नहीं सकती। उसे सहारा चाहिए। पंप तक पहुंचने के लिए उसे किसी न किसीका सहारा सचमुच चाहिए। कौन दे सकेगा ?···

सिर्फ बालाजीराव !······

पर विश्वास कैसे जगेगा उसके मन में ?

कोशिश करेगी रत्ना !

उसने कोशिश की। और दिनों की अपेक्षा वह जल्दी आ गया था। यह भी हो सकता है कि इन दिनों रातें लम्बी और अंधेरी होने लगी हों।

वह उसके सामने पहुंची थी। पुड़िया ली थी। बोलना चाहा था, "बालाजी···"

पर वह जाने लगा। क्रोधित है।

न जाने कहां से अजीब-सा साहस भर आया था रत्ना के भीतर। उसने लपककर बालाजी के पैर पकड़ लिए थे। काफी जोर से रो पड़ी थी, "मैं सच कहती हूं, बिलकुल सच ! ···मैंने तुझे धोखा नहीं दिया। मैं सच···"

वह घबरा गया। बोला, "चुप !···धीरे-धीरे···दिस्-इ···इ···"

रत्ना चुप हो गई।

बालाजी रुक गया। वह आश्वस्त थी। बालाजी को भरोसा हो आया था। हां, सच ही कह रही है। बालाजी व्यर्थ नाराज हुआ। मुकुन्दराव को खूब जानता है वह। बड़ा शैतान है।···अगला-पिछला एक पल में ही भूल गया था बालाजी। वह उसकी ओर देखने लगा था। देखने की कोशिश···अंधेरा काफी है। ऐसे में सिर्फ स्वरों से ही देखा-समझा जा सकता है।

वह धीमे-धीमे बोलने लगी, "सच कहती हूं, मैंने तुझे धोखा नहीं दिया। मैं विठोबा की शपथ···"

"नहीं-नहीं, मैं समझ गया।" बालाजी भी उतने ही दबे स्वर में

बुदबुदाया, "मुझे क्रोध जल्दी आता है, पर मैं आदमी बहुत अच्छा हूं। सच में, मैं बहुत अच्छा आदमी हूं। तुमसे प्यार भी करता हूं।" फिर अचानक वह रुक गया। शायद ज्यादा बोल गया है—उसके अपने अहसास ने उसे रोक लिया।

"मैं जानती हूं—सब जानती हूं। अब तू जैसा कहेगा, वही करूंगी। उसी दिन कर देती, पर···"

"छोड़ उस दिन की बात!" बालाजी बोला, "अब तैयार है तू?"

"हां।" रत्ना के स्वर में दृढ़ता थी।

"तो ठीक है। कल, उसी तरह···बोल, पक्का रहा?"

"हां, पक्का!"

"ठीक।" वह लौट चला।

रत्ना भी लौट पड़ी। दरवाजा बन्द किया। निश्चिन्त हो रही। संजीवनी का अनुभव करती हुई।

कल···मुक्ति के अवसर की एक रात फिर आ रही है। इस बार नहीं चूकना है।

नहीं चूकी थी रत्ना। सब कुछ बड़े साहस और धैर्य के साथ किया था और अब गांव के बाहर···

काफी दूर निकल आई होगी वह?

उसने पीछे लौटकर नहीं देखा। हर कदम के साथ काफी सावधानी बरतनी पड़ रही थी। अंधेरा घना था। सौ हाथ गहरे कुएं से भी ज्यादा।

एक साल से कुछ माह ऊपर। इस बीच वह दो बार इस रास्ते पर आई थी—दिन के वक्त। विश्वनाथ मन्दिर में पूजा के लिए। आज तीसरी बार···पूरी याद सहेजकर उसने पगडंडी पर पैर डाल दिए। यही रास्ता है विश्वनाथ मंदिर का।

कितनी देर हो गई है चलते-चलते? मन में संदेह आया। कहीं रास्ता तो नहीं भूल गई वह! हर गांव पगडंडियों में लिपटा रहता है—जैसे आदमी के शरीर में छोटी-बड़ी नसें। इस घुप्प अंधेरे में कोई गलत

पगडंडी पकड़ लेना असम्भव तो नहीं। मुमकिन है कि वह विश्वनाथ मंदिर पार ही कर आई हो···अगर सचमुच रत्ना रास्ता भूल गई है तो···और वह सोचते ही कुत्ते की दूबी हुई गुर्राहट फिर से उभर आई।

रत्ना सिर से पैर तक झुरझुरा उठी। कई जगह वह गिरते-गिरते बची। धड़कन फिर तीव्र हो गई। अवश्य ही वह भटक गई है और गांव के इर्द-गिर्द ही किन्हीं पगडंडियों पर दौड़ रही है। धीरे-धीरे यह अंधेरा कायरों की तरह पास के किसी नाले में जा छिपेगा और रोशनी खिलने लगेगी। रत्ना पकड़ी जाएगी···भागती हुई···तमाशेवाली औरत !

"कौन ?" एक दबी हुई आवाज।

बालाजी ही है। रत्ना ने पहचाना।

"मैं हूं।" रत्ना का जवाब, जैसे किसी झाड़ी में छिपा भयभीत पक्षी उड़ा हो।

"बहुत देर कर दी ?" रत्ना के नजदीक आ गया वह।

रत्ना की धड़कन बढ़ गई, "अंधेरा बहुत है ना।"

"हां, है तो।"

"अब देर नहीं करनी है।"

"हां, हां।"

बालाजी का अंधेरे में बढ़ा हुआ हाथ रत्ना के शरीर पर आ गया।

"क्या है ?" रत्ना ने थूक निगलते हुए पूछा। आवाज कांप रही थी।

"कुछ नहीं। हाथ में हाथ होना चाहिए। अंधेरा बहुत है।"

रत्ना ने उसके हाथों में हाथ डाल दिया। झुरझुरी···नजदीक ही कुत्ते की आवाज···! दबी हुई धड़कन फिर उभर पड़ी···

अंधेरे में बालाजी ने उसके शरीर को जगह-जगह छूने का फिर प्रयास किया, लेकिन रत्ना ने उसका हाथ बुरी तरह झटक दिया। नहीं, अभी वह तमाशेवाली औरत नहीं है। अभी तो वह घर औरत है—किसी को भी छूट लेने की इजाजत नहीं देगी वह। तब तक नहीं, जब तक कि वह सच के मंच पर जाकर थिरक न उठे। वह अपना सम्मान नहीं खोएगी। कितनी मुसीबतें उठाई थीं उसने इस सम्मान के लिए। कितना कीचड़ी

"क···क-कौन है ?" पीछे से बालाजी फुसफुसाया।

"शायद मुकुन्दराव है।" रत्ना लड़खड़ाई।

रोशनी का गोला बड़ी तेज़ी से मुड़ता आ रहा है।

अब ?···अब ?···अब ?···और बिलकुल निश्चित हो चुका था

मुकुन्दराव ही हो सकता है। उसकी पदचापें भी तेज़ हो गई थीं—

मुकुन्दराव अकेला नहीं है। उसके साथ दो-एक आदमी भी हो सकते

"चल, जल्दी से भाग चलें हम ! दौड़ते हुए !" रत्ना ने क

हालांकि उसकी सांस इसी ख्याल के साथ फूलने लगी थी कि मुकुन्द

उसका पीछा करते हुए एकदम सिर पर आ पहुंचा है।

"नहीं !" बालाजी बोला।

"फिर क्या करेगा तू ? हम पकड़े जाएंगे ?" रत्ना घबरा गई।

"····"

"जल्दी कर ना !"

और बजाय कुछ कहने के बालाजी दौड़ पड़ा—आगे की ओर

शायद वह अकेला ही भाग जाना चाहता था। रत्ना उसके पीछे, कि

कितना तेज़ दौड़ पाती वह ! बालाजी तेज़ी से भागता गया था औ

रत्ना बहुत पीछे रह गई···

वे भी दौड़ते आ रहे थे। इतने तेज़ दौड़े थे कि उन्होंने थोड़ी ही दे

में रत्ना को पा लिया। पहले उसपर रोशनी पड़ी और फिर मुकुन्दराव

की चीख, "रुक जा !···मैं कहता हूं, रुक जा !"

रत्ना दौड़ना चाहती थी, पर रुक गई। कितना आदेशपूर्ण स्वर !

रत्ना के शरीर ने उसका साथ छोड़ दिया। सोच अलग, शरीर अलग।

वह खड़ी ही रह गई थी—हांफती हुई, और वे करीब आ गए थे। मुकुन्द-

राव और दो नौकर। *उन्होंने रत्ना को घेर लिया था।* क्रोधित मुकुन्द-

राव ने आगे बढ़कर रत्ना को दो-तीन थप्पड़ जड़ दिए। फिर हाथ पकड़ा

और वापस खींचने लगा। वह गालियां बक रहा था, *हरामजादी !···*

कुतिया !···रंडी !···मैं तुझे देखता हूं ! ज़रा घर पहुंच लेने दे, फिर···

स्साली ! भाग रही थी !"

रत्ना उसके साथ खिंचती लौट आई थी—रास्ते-भर वह गालियां

बकता रहा था। बीच में नौकर किनारा कर गए। मुकुन्दराव ने रत्ना को घर में लाते ही धक्के मार-मारकर एक कमरे में धकेल दिया। ऊपर से सखूबाई पहले ही उतर ग्राई थी और ग्रागन में प्रतीक्षा कर रही थी उसकी। जैसे ही मुकुन्दराव उसे लेकर ग्राया था, वह भी गालियां बकने लगी थी, "रंडी रंडी ही होती है ! तू वेड़ा है मुकुन्दराव, इसे इस तरह कब तक बांधे रहेगा ? किसी न किसी दिन ये ज़रूर तेरी ग्राबरू चौराहे पर बेचकर जाएगी !...मैंने तो पहले ही कहा था कि तमाशे की ग्रौरत..."

एक ग्रौर धक्का। रत्ना का सिर दीवार से जा टकराया। वह हाफ रही थी ग्रौर उसके घुटने तक कई जगह कांटे या रास्ते की झाड़ियां लग जाने के कारण खून छलछला ग्राया था। कई खरोंचें।

मुकुन्दराव खड़ा होकर फिर से गालियां बकने लगा।

पास ही खड़ी थी सखूबाई। एक सवाल, "अकेली थी या किसीके साथ?"

"ग्रकेली थी !..."

"कौन, कौन था तेरे साथ ? किससे प्रोग्राम तय हुआ था ?" इस बार मुकुन्दराव गरजा।

"कोई नहीं।" रत्ना ने उत्तर दिया। बाजारी या मामा की तरह जरूरी नहीं है कि रत्ना या जगन्नाथ भी तय करें !

"कमाल की हिम्मत है !…" सखूबाई ने आश्चर्य से कहा, 'अकेली ही भाग रही थी ? वाह री छोकरी !"

रत्ना ने होंठ भींच लिए। इतना अपमान तो मंच में भी नहीं किया जाता। सखूबाई किस सफाई के साथ चेहरा ओढ़े हुए है। अनायास उसके कानों में फुसफुसाहटें रेंगने लगीं—मुकुन्दराव और सखूबाई की फुसफुसाहटें। रात की गन्दी फुसफुसाहटें…सखूबाई और मुकुन्दराव के असली चेहरे। स्याही से पुते हुए !

मुकुन्दराव गालियां बक रहा था। गालियों के साथ-साथ हिदायतें, "अच्छी तरह समझ ले ! तू मेरी इज्जत नीलाम नहीं कर सकती ! तू मर जाएगी और यहां से इस तरह बाहर नहीं जा सकेगी !…तूने समझा क्या है मुझे ? मैं तेरे उन सारे रण्डी-भड़वों को जेल में सड़वा डालूंगा, जिनके बूते पर तू यह नाटक कर रही है। यह तमाशे का स्टेज नहीं है—घर है !…घर !"

"खूब जानती हूं कि यह कैसा घर है !" अनचाहे ही वह बोल गई।

सखू और मुकुन्दराव को धक्का लगा। क्या वह जानती है कि… और अगर जानती है तो बहुत खतरनाक बात है।

"क्या जानती है तू ? कैसा है यह घर ?" मुकुन्दराव ने कड़क आवाज में पूछा।

रत्ना चुप हो गई। अब चुप ही रहना होगा। कह देना चाहती है। उन्हें सुना देना चाहती है कि उनमें और तमाशे के सस्ते लोगों में कोई फर्क नहीं है। बल्कि तमाशे के लोग ज्यादा सही और ईमानदार हैं, पर नहीं कहा। वे उसे मार डालेंगे। वे कुछ भी कर सकते हैं जो स्टेज पर नहीं, घर में नाटक करते हों। घिनौना नाटक !

"बोल, तुझे क्या मालूम है ?" सखूबाई ने पूछा, पर भय से उसकी

पता लगना कठिन है। अनुमान करना होगा। शायद चार बजने-वाले होंगे। चार !…बालाजीराव का वक्त ?…क्या अब वह आएगा ? शायद नहीं आएगा। कैसे आ सकता है ! साहस ही नहीं होगा कि रत्ना के सामने आ सके।

नीच बालाजीराव ! रत्ना ने उसके नाम एक गाली जबड़े में भींच ली। पर दूसरे ही क्षण लगा कि यह उसके प्रति अन्याय है। मुकुन्दराव का भय क्या रत्ना को नहीं था ? क्या वैसा ही, बल्कि उससे भी कहीं अधिक भय बालाजी को नहीं हो सकता ? इस भय के कारण एक बार बालाजी ने भी तो रत्ना से धोखा खाया। धोखा देना नहीं चाहती थी रत्ना, पर धोखा बन गया। हो सकता है कि बालाजी भी उसे धोखा न देना चाहता हो और ठीक समय साहस टूट गया हो—धोखा बन गया !

पर रत्ना यह सब सोचकर भी बालाजीराव के प्रति क्रोधित है। भूल नहीं सकती कि उसे जंगल में कुत्तों के सामने अकेला छोड़कर भाग गया था वह !…

ठक्…ठक्…

शायद बालाजीराव ?…पर वह कैसे हो सकता है ?… तो इस वक्त कौन होगा ? रत्ना उठ ही पड़ी होती, पर उसे खयाल आया कि वह कैद है !…कमरा बन्द कर दिया गया है बाहर से !

"येते !…थाम्बा ?"[1] सखू की आवाज। जरूर बालाजीराव ही होगा। रत्ना ने सोचा, पर सोचकर भी विश्वास नहीं कर पा रही है। इतना दुस्साहस ! अगर वही है तो क्या यह नहीं जानता होगा कि रत्ना ने उसका नाम बता दिया होगा फिर भी मरने के लिए चला आया है !

दरवाजा खुलने की आवाज। फिर बन्द होने की। रत्ना को विश्वास होने लगा—वही था। इस विश्वास के साथ एक तरह की हैरानी भी ? कमाल का साहस किया उसने ! साहस या रत्ना के प्रति विश्वास ? क्या वह जानता था कि रत्ना उसका नाम नहीं बताएगी ?

---

१. येते, थाम्बा : आ रहे हैं। जरा ठहरो !

रत्ना की निर्मलता बाहर आ रही थी। सुबह की रोशनी क्रमशः फैलने लगी थी… मुकुन्दराव ने एक लम्बी जम्हाई ली और अपने कमरे में जा लेटा।

अँगड़ाई धीरे-धीरे चौखटे पर पड़ रही थी। बिलकुल ऐसी ही किरन का रत्ना ने, पर विशेष महत्व नहीं रखता है…

सच ?…

यह 'सच' सारी जिन्दगी रत्ना को घेरे रहेगा —निरन्तर! जिस बैंगाली पर विश्वास किया था, वह इस तरह टूट गई ? सोचकर रत्ना को अविश्वास होता है। एक बार इत्तफाक से ही रत्ना नहीं निकल सकी थी और बालाजीराव रहने का स्वांग भरने लगा था—इस तरह जैसे सचमुच वह रत्ना को बहुत चाहता था। झूठा ! …और ठीक वक्त पर उसे अकेली छोड़कर भाग गया। कायर ! …

प्यास से गला चटकने लगा था रत्ना का। बदन में जगह-जगह दर्द बिखरा हुआ है। अलसेशियन कुत्ते के झिंझोड़ डालने का दर्द ! रत्ना ने कनपटी सहलाई। तमाचा मारते समय मुकुन्दराव के हाथ की अंगूठी से कनपटी की चमड़ी छिल गई थी और वहाँ खून चुहचुहा आया था… अब वह सूख चुका है और उसकी जगह एक लकीर-सी महसूस होती है…खुरदरी लकीर।

अगर रत्ना बालाजी का नाम ले देती तो मुकुन्दराव उसे दस-बीस मील लम्बी गुफा तक में से ढूंढ़ लाता और मार-मारकर भुरकस निकाल देता। कोई गवाही देनेवाला भी न मिलता !…अनायास उसने महसूस किया जैसे बालाजीराव का नाम न लेकर उसने भूल की है। कम से कम दंड तो मिलता उसे। प्रेम के नाम पर छलने का दंड !

पर नहीं, ठीक किया है रत्ना ने ! क्या लाभ होता यदि बालाजी की मार-कुटाई हो जाती !

दर्द फिर कौंध उठा। प्यास तेज हो आई। पानी तक नहीं मिल सकता है। मुकुन्दराव और सखूबाई जा चुके हैं।…कितने बजे होंगे ?

पता लगना कठिन है। अनुमान करना होगा। शायद चार बजने-वाले होंगे। चार !···बालाजीराव का वक्त ?···क्या अब वह आएगा ? शायद नहीं आएगा। कैसे आ सकता है ! साहस ही नहीं होगा कि रत्ना के सामने आ सके।

नीच बालाजीराव ! रत्ना ने उसके नाम एक गाली जबड़े में भींच ली। पर दूसरे ही क्षण लगा कि यह उसके प्रति अन्याय है। मुकुन्दराव का भय क्या रत्ना को नहीं था ? क्या वैसा ही, बल्कि उससे भी कहीं अधिक भय बालाजी को नहीं हो सकता ? इस भय के कारण एक बार बालाजी ने भी तो रत्ना से धोखा खाया। धोखा देना नहीं चाहती थी रत्ना, पर धोखा बन गया। हो सकता है कि बालाजी भी उसे धोखा न देना चाहता हो और ठीक समय साहस टूट गया हो—धोखा बन गया !

पर रत्ना यह सब सोचकर भी बालाजीराव के प्रति क्रोधित है। भूल नहीं सकती कि उसे जंगल में कुत्तों के सामने अकेला छोड़कर भाग गया था वह !···

ठक्···ठक्···

शायद बालाजीराव ?···पर वह कैसे हो सकता है ?···तो इस वक्त कौन होगा ? रत्ना उठ ही पड़ी होती, पर उसे खयाल आया कि वह कैद है !···कमरा बन्द कर दिया गया है बाहर से !

"येते !···थाम्बा ?"* सखू की आवाज। जरूर बालाजीराव ही होगा। रत्ना ने सोचा, पर सोचकर भी विश्वास नहीं कर पा रही है। इतना दुस्साहस ! अगर वही है तो क्या यह नहीं जानता होगा कि रत्ना ने उसका नाम बता दिया होगा फिर भी मरने के लिए चला आया है !

दरवाजा खुलने की आवाज। फिर बन्द होने की। रत्ना को विश्वास होने लगा—*वही था। इस विश्वास के साथ एक तरह की हैरानी भी ?* कमाल का साहस किया उसने ! साहस या रत्ना के प्रति विश्वास ? क्या वह जानता था कि रत्ना उसका नाम नहीं बताएगी ?

१. येते, थाम्बा : आ रहे हैं। जरा ठहरो !

प्यास और तेज हो आई है। चटकन तीव्र !···इसके साथ-साथ घुटन भी। बालाजीराव ही था—कायर बालाजीराव !···शायद नहीं—एक स्थिति विशेष के कारण लाचार बालाजीराव !···रत्ना पर विश्वास करनेवाला गरीब बालाजीराव !

बन्द दरवाजे की दरार से हल्की-हल्की रोशनी निकलने लगी है। सुबह !···सुबह की शुरुआत ! रत्ना का दर्द अधिक बढ़ गया है। जी होता है कि चीख-चीखकर सारे मुहल्ले को जगा दे। कहे कि भले, आबरूइज्जतदार लोग अपनी औरतों को प्यासी मार डालते हैं। उसने बेचैनी से गला मसलना शुरू कर दिया है। सखूबाई काम करने लगी है। अब कहां गई इसकी रईसी !···रत्ना खुली थी तो सुबह से लेकर रात तक सामान ढोनेवाले गधे की तरह जुती रहती थी।

सखूबाई दरवाजे के करीब से निकले तो रत्ना आवाज देकर उससे पानी मांग लेगी ?···

दरवाजा दूसरी बार खड़का !···

"कौन है ?" सखू का सख्त स्वर।

"मैं। मारोती···"

"अच्छा-अच्छा।"

दरवाजा खोलने की आवाजें। रत्ना के भीतर एक छटपटाहट आ बैठी। मारोतीराव है—उसका जेठ। घर में एक यही हो, जिसमें कुछ आदमीयत है। रत्ना का मन हुआ कि जोर-जोर से रो पड़े। मारोती को मालूम हो जाएगा सब। मालूम होते ही वह पूछताछ करेगा। हो सकता है कि वह रत्ना को आजाद भी करवा दे। झगड़ा करने में भी तेज है। मुकुन्दराव का भाई ठहरा !···पर अन्तर भी है, उसमें और मुकुन्दराव में। वह मनुष्यों की तरह पेश आता है जबकि मुकुन्दराव मनुष्य होते हुए भी एक कुत्ता है।···

सखूबाई उससे पूछ रही है कि वह कल रात को ही क्यों न आ गया ? और वह कारण बता रहा है—काम लग गया था। जरूरी काम।

कमीनी !···अपने छोटे भाई जैसे देवर से सम्बन्ध बनानेवाली वेश्या। कितनी सती-साध्वी की तरह नाटक कर रही है पतिभक्ति का !

पर सिर्फ सखूबाई ही तो अपराधी नहीं है ? रत्ना ने अपने-आपको जवाब देकर निरुत्तर कर दिया। मुकुन्दराव भी अपराधी है। बल्कि वही सबसे ज्यादा अपराधी है। जो रत्ना जैसी सुन्दर और उसके प्रति ईमानदार पत्नी से धोखा कर अपनी माँ जैसी भाभी के साथ सोता है ! नीच !··· कीड़ा !···

मारोतीराव को कुछ पता ही नहीं होगा ? पता तब चलेगा, जब काफी सुबह हो चुकेगी और वह रत्ना को नहीं देखेगा।···मगर वह रत्ना का खयाल ही रहा। मारोती पूछ रहा था, "आज रत्ना नहीं है क्या ?···तुझे इतनी जल्दी काम पर क्यों लगना पड़ा है ?"

हां, ठीक पूछ रहा है वह। रोजाना इस वक्त तक सखू को कभी जागने की जरूरत नहीं होती थी···रत्ना यह तो भूल ही गई थी।

"वह सो रही है।" सखू जवाब दे रही थी। कमीनी !···झूठ बोलकर मारोतीराव को बहका रही है।

फिर मारोती की आवाज नहीं आई। जाहिर था कि वह सखू के उत्तर से सन्तुष्ट हो गया है। रत्ना का जी फिर जोर-जोर से रोने का होने लगा। कितनी लाचार है वह ! उसके सामने, उसके लिए झूठ बोला जा रहा है और वह कुछ भी नहीं कर सकती। कैदिन !

पदचापें।···शायद मारोती ऊपर आ रहा है। अपने कमरे में। रत्ना की प्यास अधिक बढ़ गई है। अब सही नहीं जा रही है। और सखू है कि इस ओर आई ही नहीं है। जान-बूझकर नहीं आ रही है।

दरवाजे की दरारों पर सफेद धारियां पैदा हो गई हैं—सुबह की रोशनी में नहाई हुई धारियां ! पांच बजनेवाले होंगे। बदन में दर्द की लपटें फैली हुई हैं···गले में मरुथल आ बैठा है।

"वहिनी !" न जाने किस क्षण, कैसे रत्ना पुकार उठी, यह उसे स्वयं ही नहीं मालूम हुआ। बस, आवाज बाहर आ चुकी थी।

सखूबाई दरवाजे के करीब आ गई। बाहर से ही पूछा, "क्या है ?"

"पानी !···मुझे बहुत जोर से प्यास लगी है !"

सखू हंसी। उत्तर कुछ नहीं।

"बहुत प्यास···"

"पानी तो तुझे तेरा मुकुन्दराव ही देगा !" सखू ने कड़ो
दिया। चली गई।

अचानक रत्ना चुप हो गई। अंधेरा काफ़ी है। इस अंधेरे में रो
दो-तीन आधी-पूरी लाइनें, और बस।···रत्ना की सारी ज़िन्दगी
ही अंधेरा और अंधेरे में गुम लाइनें। यही लाइनें ज़िन्दा रखे हुए है

वह धरती पर फैल गई। बेचैनी से करवटें लेती हुई। मन
ज़्यादा खटकने लगा था। उसने थूक के घूंट भरने प्रारंभ कर दि
तरह घुट-घुटकर कब तक ज़िन्दा रह सकेगी ?

वे चाय पी रहे थे। बीच-बीच में एकाध सवाल किसी ओर
जाता और फिर देर के लिए चुप्पी।

रत्ना उसी तरह कमरे में पड़ी हुई है - सुन पा रही है।

थोड़ी देर बाद मारोती ने पूछा, "कमाल है ! रत्ना अब त
रही है ?"

जवाब मुकुन्दराव ने नहीं, सखू ने दिया। स्वर में कड़वाहट, "हां
वह सारी ज़िन्दगी इसी तरह सोती रहेगी !"

"क्या मतलब ?"

"तुम्हें पता नहीं, वह कुतिया रात को भाग रही थी !···भा
गई थी। वह तो विठोबा की कृपा, मेरी नींद खुल गई और दरवाज़ा
देखकर मैंने मुकुन्द को जगा लिया।"

"पर···ऐसा कैसे हो सकता है ?" मारोती आश्चर्य से पूछ रहा

"हुआ है···हो क्या सकता है ! यही हुआ है।" सखू बताती है,
फिर क्रमशः सारा किस्सा बयान कर देती है। अंत में यह जानकारी
कि रत्ना कोठरी में बन्द है। सारे विवरण के बीच बार-बार गालि

थोड़ी देर के लिए सन्नाटा फैल गया है। फिर मारोतीराव
पदचाप···

सखू का सवाल, "कहां जा रहे हो ?"

"उसे देखने !"

"पर माऊ···" मुकुन्दराव भी उसी टोन में कहता है, जिस टोन में सखू कह रही थी।

मारोती उत्तर नहीं देता। दरवाजा खुलने लगा। रत्ना फुर्ती से उठी। माथे पर पल्लू खींचा। बैठ गई।

रोशनी की लकीरें एक चौकोर डब्बा बन गईं। प्रकाश भीतर तक आ गया। प्रकाश के साथ ही मारोतीराव। आवाज में कठोरता, "क्यों रत्ना, यह क्या सुन रहा हूं मैं?"

रत्ना चुप। चुप, यानी स्वीकार।

"तू भाग रही थी?" मारोती की आवाज पहले से अधिक तेज हुई।

रत्ना चुप है। कभी लगता है कि अपराधी है, कभी नहीं!

"क्यों?"

रत्ना को उत्तर देना ही होगा। न देगी तो सिर्फ वही अपराधी समझी जाएगी। देहरी के करीब मुकुन्दराव और सखू आ गए थे। बीच-बीच में एक-दूसरे को देख लेते हैं चोर-भाव से। चोर तो हैं ही। रत्ना, मारोती, घर, समाज—सबके चोर!···

"बोलती क्यों नहीं है? तुझे यहां क्या तकलीफ है?" मारोती गरजा, "तुझे इज्जत मिली है। सिवकों के लिए नाचने की आवारा जिन्दगी से मुक्ति दी है तुझे, फिर भी···!"

रत्ना बहुत कुछ कहना चाहती थी, पर कुछ न कहकर जोर से रो पड़ी—शायद यही है उत्तर। यही हो सकता है।

मारोती की कठोर आवाज कांप उठी। कुछ हड़बड़ाकर पूछने लगा, "क्यों? रोती क्यों है?···क्या तकलीफ है तुझे यहां?"

"बन रही है, हरामजादी!···लुच्ची!···" सखूबाई ने घृणा से कहा। घृणा या घृणा का अभिनय?

मारोती ने उसे घूरकर देखा, जिसका मतलब था कि वह चुप हो जाए। वह चुप हो गई। मुकुन्दराव भी कुछ कहना चाहता है, किन्तु मारोती को खूब जानता है। बड़ा है। स्वभाव से अच्छा है, पर बहुत कठोर भी है। उसे क्रोध आता नहीं है। आ जाए तो वह कुछ भी कर सकता है,—हत्या तक!

रत्ना रो रही थी। अब हिचकियाँ···अचानक मारोती की दृष्टि उसकी कनपटी पर पड़ी। सलू की सूजी हुई लकीर है वहाँ। वह मुकुन्द-राव की ओर मुड़ा। एक सवाल, 'तुम लोगों ने इसे मारा है ?

मुकुन्द ने गरदन झुका ली।

"मैं क्या पूछ रहा हूं ?"

"मारेंगे नहीं तो क्या पूजेंगे इसे ?" सलू ने कहा।

"मैं तुमसे नहीं, इससे पूछ रहा हूं।"

"पर भाऊ···यह···यह भाग रही थी !" मुकुन्दराव के पास और कोई सफाई नहीं है, न कोई आरोप !

"इस तरह मारा जाता है ?···क्यों भाग रही थी ? बताओ, क्यों भाग रही थी ?"

"इसीसे पूछो।" मुकुन्द ने कहा।

"हां, इससे भी पूछ रहा हूं। तुमसे भी पूछता हूं—क्यों भाग रही थी ? बोल रत्ना !"

रत्ना बोली। आवाज़ में रुलाई। बीच-बीच में हिचकियां, "यह जब से मुझे लाए हैं, समझते हैं कि मैं तमाशेवाली हूं ! बार-बार मुझे अपमानित करते हैं। सब यही कहते हैं। कोई सीटी बजाता है तो मैं क्या करूं ? घर में औरत-मर्द इस तरह से रहते-घूमते हैं। इन्हें मुझपर विश्वास नहीं है। जब विश्वास ही नहीं है तो···"

मारोतीराव के सवाल ठंडे हो गए। जानता वह भी है कि यह सब होता रहा है। अब तक न कभी कुछ कहने की जरूरत समझी थी, न लगा ही था कि कहना जरूरी है। रत्ना दोषी नहीं है, मुकुन्द है, सलू है, वह खुद है।

मुकुन्दराव और सलू गरदन लटकाए खड़े हैं। अपराध की स्वीकारोक्ति उनके भीतर भी है, किन्तु कैसे स्वीकारें ?—मन इतने बड़े नहीं हैं। मुकुन्दराव मर्द है। कोई मर्द कैसे झुक सकता है स्त्री के सामने ? फिर उसके सामने, जिसके लिए वह हमेशा यह मानता हो कि वह उसे नर्क से स्वर्ग में ले आया है।··· लगभग यही स्थिति सलूबाई की है। वह भी बड़ी है—जेठानी। अपराध स्वीकार कैसे कर सकती है ?

गया चिन्तित भी हुआ। अब क्या होगा? रत्ना को इस तरह बहलाए-फुसलाए रखकर कब तक काम चलेगा। जिस परिन्दे के पर आ चुके हों, वह किसी न किसी दिन तो जरूर ही उड़ेगा और उसकी उड़ान गाव के इस इज्जत-आबरूवाले घर की सारी प्रतिष्ठा धो देगी। उसने बेचैनी से चेहरे पर हथेलियां फिराई, पूछा, "फिर?"

"फिर क्या, वह तो नाचने-गानेवाली पंछी है। उसे घर में बन्द नहीं रखा जा सकता। किसी दिन जरूर जाएगी। आज नहीं तो कल।" सखू बोली।

"तो जाने दो उसे।···खुद जाकर उस नर्क में छोड़ आओ!" मारोती ने सलाह दी।

"पर ऐसा कैसे हो सकता है भाऊ?" मुकुन्दराव घबराया। रत्ना के जाने से सारे मोहरे बिखर जाएंगे।···राजनीतिक मोहरे। वह सब सोचा हुआ, जिसके कारण रत्ना को लाया था।

"क्यों नहीं हो सकता? वह भागे, इससे तो यह ज्यादा अच्छा है कि उसे खुद ही छोड़ आओ। समाज की एक सभा करो और उसमें हाथ जोड़कर कह दो कि अब तक जो सोचा था, सब गलत हुआ। गांधीजी झूठ कहते थे! बस!"

"पर···"

"अब पर-वर क्यों करते हो? खुद ही तो साप के बिल में हाथ डाला था, अब कैसा पर?" मारोती झल्लाया।

सखू ने कहा, "क्या इज्जत रहेगी घर की!"

"घर की इज्जत तो उसी दिन मिट गई थी, जिस दिन मुकुन्दराव उसे घर मे लाया था। अब जो किया है, उसका परिणाम तो भोगना ही होगा।"

मुकुन्द को लगा कि बला उसपर आती है। सफाई देने लगा, "मैंने तो अच्छा ही सोचा था···"

"क्या अच्छा सोचा था?" मारोती बड़बड़ाया।

"मैंने सोचा था कि उसका उद्धार भी हो जाएगा और चुनाव में···"

"तू एकाएक कैसे आ गई मालती?" रत्ना ने विषय बदलने की कोशिश की।

"बस, ऐसे ही।" मालती ने जवाब दिया, "इरादा नहीं था। पर एक दिन के लिए काम बन्द रहा। इस बार बारिश बहुत है ना। और हम पार्टीवाले भी चाहते थे कि कुछ छुट्टी मिले। भाई इन दिनों बहुत थकान हो गई है।"

"सचमुच?"

"हां, सचमुच!··· सच में, अब से तू पराई औरत बन गई है। धत!" मालती हँसी।

रत्ना गम्भीर हो गई। जिस बात से बार-बार बची रहना चाहती है, लौट-फिरकर वही विषय आ जाता है।

"मगर तू कमजोर बहुत हो गई है?" मालती ने कहा और इससे पूर्व कि रत्ना कुछ कहे, उसने अपनी बात में मुकुन्दराव के प्रति व्यंग्य कर दिया, "क्यों, पटेल के यहां खाने की कमी है क्या? घी-दूध कुछ कम पड़ता है, या तुम्हें हो नहीं देते?"

मुकुन्दराव कुढ़कर रह गया। रत्ना भी चुप।

मालती को आश्चर्य हुआ—ऐसा तो कुछ कहा नहीं है कि बिलकुल दोनों चुप रह जाएं। जब से वह आई है, उसे लग रहा है जैसे कुछ तनाव है। क्यों है, क्या है, यह समझना कठिन। पूछ भी लिया, "क्यों, तुम दोनों में कुछ झगड़ा हुआ है क्या?"

देखा, फिर कुछ साहस संजोकर कहा, "एक प्रार्थना है। हमारे, आपके सभीके हित में है।"

"कहिए।" जगन्नाथ ने पूछा।

"आप लोग तो जानते ही हैं कि समाज में हम लोगों को रहना-सहना पड़ता है। दस लोग दस तरह की बातें करते हैं। अगर आप इसी तरह यहां आते रहेंगे तो उससे बातें बढ़ेंगी। हम तो ऐसा नहीं चाहते, पर क्या करें, लोक-लाज के कारण कहना पड़ता है···"

माला और मुकुन्द निरुत्तर एक-दूसरे को देख रहे हैं। चेहरे पर एक सन्नाटा घिर आया है।

मारोती को लग रहा है कि यह ज्यादती है, पर चुप है। चुप ही रहना चाहिए।

"रत्ना से जब मिलना चाहें तो एक लिफाफा लिख दिया कीजिए, हम खुद उसे किसी बहाने आपसे मिलने भेज दिया करेंगे!"

"आगे से ख्याल रखेंगे मुकुन्द बाबू!" माला बोली। आवाज भर्रा गई है।

जगन्नाथ का मन भी भारी हो गया है, पर क्या कहे! रत्ना का विवाह हुआ है या वह बिक्री की गई है। उबल पड़ना चाहता है जगन्नाथ। किन्तु विवेक कहता है—ऐसा करना ठीक नहीं है।

मुकुन्द ने हाथ जोड़ दिए। स्वर में विनम्रता। चेहरे पर नाटकीय ढंग से उदासी। बोला, "बुरा न मानिएगा, यह चलन की बात है। जाति-समाज में रहते हैं तो हमेशा अपनी मनमानी ही नहीं चलती, कुछ बातें उनकी भी माननी पड़ती हैं।"

"मैं समझ गई आपकी बात। विश्वास रखें कि आगे से कोई कभी भी रत्ना से मिलने नहीं आएगा। भगवान आप लोगों को सुखी रखे। सुनकर ही जी को तसल्ली दे लिया करेंगे!···चलो, जगन्नाथ!" और इससे पहले कि मुकुन्द और अधिक औपचारिकता बरते, माला घर से बाहर निकल गई। पीछे-पीछे सिर झुकाए हुए जगन्नाथ।

... ...र मुकुन्दराव कुछ पल चुप रहे, फिर मारोती ने कहा, ... अच्छा नहीं लगा।"

देखा, फिर कुछ साहस संजोकर कहा, "एक प्रार्थना है। हमारे, आपके, सभी के हित में है।"

"कहिए।" जगन्नाथ ने पूछा।

"आप लोग तो जानते ही हैं कि समाज में हम लोगों को रहना-सहना पड़ता है। दस लोग दस तरह की बातें करते हैं। अगर आप इसी तरह यहां आते रहेंगे तो उलटी बातें बढ़ेंगी। हम तो ऐसा नहीं चाहते, पर क्या करें, लोक-लाज के कारण कहना पड़ता है···"

माला और मुकुन्द निरुत्तर एक-दूसरे को देख रहे हैं। चेहरे पर एक सन्नाटा घिर आया है।

मारोती को लग रहा है कि यह ज्यादती है, पर चुप है। चुप ही रहना चाहिए।

"रत्ना से जब मिलना चाहें तो एक लिफ़ाफ़ा लिख दिया कीजिए, हम खुद उसे किसी बहाने आपसे मिलने भेज दिया करेंगे!"

"आगे से ख्याल रखेंगे मुकुन्द बाबू!" माला बोली। आवाज़ भर्रा गई है।

जगन्नाथ का मन भी भारी हो गया है, पर क्या कहे! रत्ना का विवाह हुआ है या वह बिक्री की गई है। उबल पड़ना चाहता है जगन्नाथ। किन्तु विवेक कहता है—ऐसा करना ठीक नहीं है।

मुकुन्द ने हाथ जोड़ दिए। स्वर में विनम्रता। चेहरे पर नाटकीय ढंग से उदासी। बोला, "बुरा न मानिएगा, यह चलन की बात है। जाति-समाज में रहते हैं तो हमेशा अपनी मनमानी ही नहीं चलती, कुछ बातें उनकी भी माननी पड़ती हैं।"

"मैं समझ गई आपकी बात। विश्वास रखें कि आगे से कोई कभी भी रत्ना से मिलने नहीं आएगा। भगवान आप लोगों को सुखी रखे। सुनकर ही जी को तसल्ली दे लिया करेंगे!···चलो, जगन्नाथ!" और इससे पहले कि मुकुन्द और अधिक औपचारिकता बरते, माला घर से बाहर निकल गई। पीछे-पीछे सिर झुकाए हुए जगन्नाथ।

मारोती और मुकुन्दराव कुछ पल चुप रहे, फिर मारोती ने कहा, "अच्छा नहीं लगा।"

हां, रत्ना ठगी ही जा रही है। और ठगने में माहिर है मुकुन्दराव। उसने पहले भी इसी तिकड़म और आश्वासन से रत्ना को ठगा था। इस बार कोई नई ठगी !···

क्या मालूम बालाजीराव भी ठग रहा हो !

लगता नहीं है। लगता तो मुकुन्दराव के बारे में भी नहीं था, पर वह पहले दरजे का ठग निकला !···अजीब दुनिया है। कौन ठग रहा है, किसे ठग रहा है, यह मालूम हो नहीं हो पाता और ठगी चलती रहती है। बालाजीराव के बारे में ही क्या मालूम था ?···पर उसने ठगा था रत्ना को !

और क्या रत्ना निरपराध है ? रत्ना भी तो बालाजी को ठगने की ही कोशिश कर रही थी। वह चाहती थी कि बालाजी को इस कैद से ध्येय तक ले जाने की बैसाखी की तरह इस्तेमाल करे और सच में फेंककर बगल से किनारे कर दे !

सब तरफ ठगी। रत्ना को ठगता हुआ मुकुन्दराव, रत्ना को ठगता हुआ बालाजीराव। बालाजीराव को ठगती हुई रत्ना, और सब और मुकुन्दराव मिलकर मारोती को ठगते हुए !···सब ठग !

पर बालाजीराव कहता है कि वह ठग नहीं है।

और रत्ना विश्वास नहीं कर पा रही है···

बालाजीराव क्षमा-याचना करने लगा था, पर रत्ना चुप रही थी। तीन दिनों से यही चल रहा है। कभी बालाजी की मूक दृष्टि वाचाल होकर कहने लगती है *कि वह ठग नहीं है,* कभी वह कहने भी लगता है कि रत्ना उसे समझने की कोशिश करे···

और रत्ना हर बार खामोश। कुछ उसके प्रति क्रोध की खामोशी और कुछ घर के बदले हुए माहौल के प्रति रत्ना का झुकाव···

आज भी उसे लगा था कि वह पिछले तीन दिनों की ही तरह माफी मांगेगा। हर बार उम्मीद करता है कि इस बार शायद रत्ना कह देगी—'मैं समझती हूं।'

वह पुड़िया लेने जा रही है। *आंगन में सन्नाटा।* उसके अपने कमरे के भीतर गुर्राती हुई मुकुन्दराव की सांसें और दोमंजिले पर चढ़े हुए

हां, रत्ना ठगी ही जा रही है। और ठगने में माहिर है मुकुन्दराव। उसने पहले भी इसी विनम्रता और गायपन से रत्ना को ठगा था। इस बार कोई नई ठगी !···

क्या मालूम मारोतीराव भी ठग रहा हो !

लगता नहीं है। लगता तो मुकुन्दराव के बारे में भी नहीं था, पर वह परले दरजे का ठग निकला !···अजीब दुनिया है। कौन ठग रहा है, किसे ठग रहा है, यह मालूम ही नहीं हो पाता और ठगी चलती रहती है। बालाजीराव के बारे में ही क्या मालूम था ?···पर उसने ठगा था रत्ना को !

और क्या रत्ना निरपराध है ? रत्ना भी तो बालाजी को ठगने की ही कोशिश कर रही थी। वह चाहती थी कि बालाजी को इस फंद से संच तक ले जाने की बैसाखी की तरह इस्तेमाल करे और संच में फेंककर बगल से किनारे कर दे !

सब तरफ ठगी। रत्ना को ठगता हुआ मुकुन्दराव, रत्ना को ठगता हुआ बालाजीराव। बालाजीराव को ठगती हुई रत्ना, और सखू और मुकुन्दराव मिलकर मारोती को ठगते हुए !···सब ठग !

पर बालाजीराव कहता है कि वह ठग नहीं है।

और रत्ना विश्वास नहीं कर पा रही है···

बालाजीराव क्षमा-याचना करने लगा था, पर रत्ना चुप रही थी। तीन दिनों से यही चल रहा है। कभी बालाजी की मूक दृष्टि वाचाल होकर कहने लगती है कि वह ठग नहीं है, कभी वह कहने भी लगता है कि रत्ना उसे समझने की कोशिश करे···

और रत्ना हर बार खामोश। कुछ उसके प्रति क्रोध की खामोशी और कुछ घर के बदले हुए माहौल के प्रति रत्ना का झुकाव···

आज भी उसे लगा था कि वह पिछले तीन दिनों की ही तरह माफी मांगेगा। हर बार उम्मीद करता है कि इस बार शायद रत्ना कह देगी—'मैं समझती हूं।'

वह पुड़िया लेने जा रहा है। आंगन में सन्नाटा। उसके अपने कमरे के भीतर गुर्राती हुई मुकुन्दराव की आंखें और दोमंज़िले पर चढ़े हुए

मारोती मौर सखूबाई…सब तरफ नींद ! सिर्फ दरवाजे पर बालाजीराव मौर दरवाज़ा खोलती हुई रत्ना।

दरवाज़ा खुला। रत्ना ने देखा कि वह हमेशा की तरह अपने चेहरे पर एक गिगियाहट बटोरे हुए है। पुड़िया थामे हुए हाथ भागे बढ़ता है… हाथ में कम्पन !

रत्ना विश्वास मौर भविश्वास की ऊहापोह में डूबी हुई पुड़िया सम्हाल लेती है। दरवाज़ा बन्द ही करना चाहती है कि वह कहता है, "रत्ना !…"

रत्ना चुप। दरवाज़ा बन्द करते-करते रुक जाती है।

वह भयातुर इधर-उधर देखता है। कहता है, "धरम से रत्ना, मैं तुझे धोखा नहीं देना चाहता था, पर ठीक वक्त पर न जाने क्या हुमा था मेरे भीतर !…मैं डर गया। सच, मैं डर गया था ! पर भव पछतावा हो रहा है कि मैंने भूल की !…"

"…"

"तुझे विश्वास नहीं होता ?"

रत्ना चाहती है कि विश्वास कर ले।

"रत्ना !"

"…"

"मैं सच कह रहा हूं।" वह रोने-सा लगता है।

रत्ना दरवाज़ा बन्द कर देना चाहती है पर…

भचानक वह झुक जाता है। रत्ना के पैर पकड़ लेता है, "सच !… मैं सच कह रहा हूं। विठोबा की शपथ !…मैं तुझे धोखा नहीं देना चाहता था, मगर…"

"भरे-रे यह क्या करता है तू…" वह पीछे हट जाती है चौंककर मौर इससे पहले कि वह ज्यादा कुछ कहे, धड़ाम् से दरवाज़ा बन्द कर देती है। लगता है कि ठीक किया है, लगता है कि शायद गलत किया ! चुप-चाप माकर चारपाई पर मा लेटती है। मुकुन्दराव पास ही सो रहा है—भल्सेशियन कुत्ता !…

नहीं, बदलाव में गाय !

नहीं, कुत्ता !

गाय !···

शायद यह कुत्ते का—चेहरा भी कुत्ते का, किन्तु इस चेहरे पर एक और मुखौटा चढ़ा रखा है उसने। गाय का मुखौटा। सीधी और शांत गाय !

यहां भी वही अविश्वास की स्थिति रत्ना को घेरे रहती है। माथे की नसों में तनाव···धीमा-धीमा दर्द। क्या सच है, क्या झूठ, यह जानना कठिन, या जानने में असमर्थ रत्ना।

क्या इस स्थिति में भी रत्ना यहां रह सकती है ? तनाव और भीतरी आंदोलनों की स्थिति ! नहीं रह सकती—पागल हो जाएगी !

विश्वास ? किसपर करे विश्वास ?

बालाजीराव पर ?

मुकुन्दराव पर ?

सखूबाई पर ?

मारोती पर ?

खुद अपने-आपपर ?···और कहीं, किसीपर नहीं ठहर पाता विश्वास। एक गेंद की तरह समतल धरती पर यहां-वहां ढुलक रहा है और उसीके साथ ढुलक रही है रत्ना !···

न जाने कब तक ढुलकती रहेगी ? एक गहरी सांस खींचकर करवट बदल लेती है। मुकुन्दराव अब भी सो रहा है और रत्ना नये दिन की प्रतीक्षा में जाग रही है। एक और नया दिन···रोज़ की तरह। विश्वास और अविश्वास की ऊहापोह से भरा हुआ !

पर यह नया दिन फैसले का दिन साबित हुआ। खुद का खुद के बारे में फैसला।

मारोतीराव सुबह ही चला गया था। मुकुन्दराव का चुनाव-चक्र सिर्फ मुकुन्दराव को ही नहीं घेरे हुए है, बल्कि उसमें मारोतीराव भी उलझा हुआ है। रोज़-ब-रोज़ यहां-वहां गांवों में जाकर पंचों से मिलना पड़ता है। दस दिन बाद चु ते वक्त कह गया था मारोतीराव—कल लौट सकेगा। पंच को ाने और अपनी तरफ करने में एक

दिन तो खर्च होगा ही।

सारे दिन मुकुन्दराव भी गायब रहा। वह भी लोगों से मिलने-जुलने और जोड़-तोड़ बिठाने में व्यस्त था। बेलापूरकर मुकाबले में है। पुराना नेता आदमी। तीन साल से बराबर सरपंच चुना जाता रहा है।

मुकुन्दराव और उसकी जात एक है। जात के वोट पांच हैं। इन पांच वोटों को तोड़ने के लिए दोनों के बीच कशमकश है। शाम को लौटा—बिलकुल दिया जले। खा-पीकर फिर निकल गया। रत्ना से कह गया था कि रात को प्रतीक्षा न करे। लौटने का ठिकाना नहीं है। काम के दिन शुरू हो गए हैं। रत्ना निश्चिन्त होकर कमरे में जा समाई। दिन-भर की थकान। थोड़ी ही देर में सो गई थी वह। जागी तब, जब उसने लगातार कुण्डी की खड़खड़ाहट सुनी। शायद मुकुन्दराव लौट आया है। आलस-युक्त होकर उठे, कपड़े सम्हाले, इससे पहले ही कुण्डी जोर से खड़खड़ाई, फिर दरवाज़े की चरमराहट। शायद सखूबाई जाग गई थी और दरवाज़ा खोल दिया था उसने। फिर भी रत्ना को लगा कि बाहर पहुंचना जरूरी है। दरवाज़ा खोलकर आंगन में निकलना ही चाहती थी कि रुक गई। उसने देखा कि मुकुन्दराव और सखूबाई दो छायाओं की तरह एक-दूसरे के करीब खड़े हैं···वे और करीब गए और मुकुन्दराव ने शायद उसे चूम लिया!

रत्ना की सांस जोर-जोर से चलने लगी। वह चीखकर उन्हें गालियां देना चाहती थी···पर रत्ना ने देखा कि सखू और मुकुन्द एक-दूसरे का हाथ पकड़े हुए ऊपर की मंज़िल की ओर जा रहे हैं!···कमीने!···नीच!···घृणित!···

सुलग गई रत्ना। वे ऊपर की ओर जाते-जाते लोप हो गए। जाहिर था कि कमरे में पहुंच गए हैं। इस खयाल के साथ ही रत्ना के कान एक बिसरी हुई याद से जुड़ गए—आवाज़ें, घृणित बातचीत, कुंठित सेक्स के चोर!···

वह चारपाई पर आ गिरी।···अब नहीं रह सकेगी यहां। किसी मारोती का कोई आश्वासन रत्ना को नहीं रोक सकेगा! सारी ऊहापोह खत्म हो चुकी है। दबी हुई घुंघरुओं की आवाज़ें पूरे जोर से उभर आई

"ठीक है।" बालाजी खुश हुआ। रत्ना को भी दूर की सूझी है। तेज औरत। तमाशेवाली ही ठहरी! सारे जमाने को चराने का धं करनेवाली जात! वह मन ही मन रत्ना की सराहना करने लगा।

"तो बस, जाकर भाई को सब कुछ बता दे। कह देना कि र की जान खतरे में है। बिलकुल कैद ही पड़ी हुई है। उस दिन माला अब भाई थी तो बताने का मौका नहीं मिला।...अब मेरी जान बचा चाहती है तो यहां से किसी तरह निकाल ले!"

"ठीक है।" बालाजी बोला।

और रत्ना ने दरवाज़ा बन्द कर दिया, निश्चिन्त होकर। अब न कुछ ज़रूर होगा। आकर चारपाई पर लेट गई। पहली बार उ महसूस किया कि वह बिलकुल हल्की हो चुकी है—कपास की त हल्की।

थोड़ी देर बाद मुकुन्दराव आ गया। रत्ना चुप पड़ी रही—
उसने समझा था कि सो रही है। यही समझाना चाहती थी रत्ना। मुकुन्दराव अपनी चारपाई पर जा लेटा था। एक-दो करवटें बदली थीं और फिर खर्राटे···

सिर्फ कुत्ता! रत्ना जागती रही। गाय का चेहरा गायब! मुखौटे लगाए हुए कब तक जी सकता है आदमी?

वह जागती ही रही थी—निश्चिन्त और हल्की होकर। निर्णय उसके पास है। अब कोई उलझन नहीं। उलझन है सिर्फ मुक्ति!···और मुक्ति के इस खयाल के साथ ही फिर से वह बिखरी हुई बैसाखी बटोरने का निश्चय कर लिया था उसने—बालाजीराव!···सचमुच बहुत विश्वसनीय है बालाजीराव!

बालाजीराव ने भी साबित कर दिया था कि वह विश्वसनीय है। उस रात रत्ना ने जैसे ही उससे कहा, "तो सचमुच तू मानता है कि तुमसे भूल हुई थी?"

"हां। कितनी बार कहूं?" उसने अकुलाहट के साथ उत्तर दिया था।

"तो फिर से तैयार है तू?" रत्ना ने सीधा सवाल किया।

"हां, तैयार हूं।"

"इस बार तो नहीं डर जाएगा?"

"नहीं!···" वह बुलन्दी से बोला।

"तो एक काम कर!···" रत्ना ने चौकन्नेपन से चारों तरफ देखा, फिर उसके करीब होकर पूछा, "हमारे संघ में जा सकता है तू?"

"पर वहां जाने की क्या जरूरत है?" वह चिन्तित हुआ, चकित थी। आखिर कहना क्या चाहती है रत्ना!

रत्ना ने बात साफ की, "बिना मदद के काम नहीं चलेगा। मेरी बाई जीप गाड़ी का बन्दोबस्त करवा देगी। उसमें बैठकर निकल चलेंगे! कुछ मिनट की बात है। कैसा रहेगा?"

"ठीक है।" बालाजी खुश हुआ। रत्ना को भी दूर की सूझी है। है तेज औरत। तमाशेवाली ही ठहरी! सारे जमाने को चराने का धंधा करनेवाली जात! वह मन ही मन रत्ना की सराहना करने लगा।

"तो बस, जाकर भाई को सब कुछ बता दे। कह देना कि रत्ना की जान खतरे में है। बिलकुल कैद ही पड़ी हुई है। उस दिन माला अबका भाई थी तो बताने का मौका नहीं मिला।...अब मेरी जान बचाना चाहती है तो यहां से किसी तरह निकाल ले!"

"ठीक है।" बालाजी बोला।

और रत्ना ने दरवाजा बन्द कर दिया, निश्चिन्त होकर। अब कुछ न कुछ जरूर होगा। आकर चारपाई पर लेट गई। पहली बार उसने महसूस किया कि वह बिलकुल हल्की हो चुकी है—कपास की तरह हल्की।

४

माला के मन का कांटा कितना सही था ? बालाजीराव ने सिद्ध कर दिया है। बालाजीराव ने यह भी बताया कि रत्ना कुछ दिन पहले भागने की कोशिश कर चुकी थी। स्वयं बालाजीराव उसे सहारा देकर सब तक ले आना चाहता था, पर बीच में ही पकड़ी गई।··· सुना है कि मारोती और मुकुन्दराव ने बहुत मारपीट की। बहुत कमजोर हो गई है। आंखों पर सूजन-सी रहती है···निश्चय ही वह बहुत दुखी है।

बेशक दुखी होगी। माला ने सोचा। बालाजीराव के कहे पर अन्ध-विश्वास करने की जरूरत नहीं है उसे। अपनी आंखों देख चुकी है कि रत्ना कमजोर हो गई है। बातचीत में भी वह उसे बहुत संक्षिप्त होती लगी थी। लगता था कि वह हर क्षण डरी-सी रहती है। अनायास माला के दिमाग में रत्ना से मुलाकात का वह दृश्य कुछ और अर्थ लेकर उभरने लगा। बालाजीराव ने जो कुछ कहा है उसके बाद उस दिन का अर्थ ही बदलने लगा है···रत्ना के संवाद, मुकुन्दराव का उस क्षण का व्यवहार, सखूबाई का नमस्कार न लेना, फिर मुकुन्दराव का यह कहना कि माला वगैरा वहां न आया करें !···

"वह मर जाएगी !···मुकुन्दराव की कैद से छूटना बहुत जरूरी है।" बालाजीराव बड़बड़ा रहा था।

कावेरी चुप है, जगन्नाथ भी चुप है और अण्णाजी भी चुप हैं। लगता ... सबके बीच आतंक, भय और चुप्पी।

मौत का-सा डरावना सन्नाटा !

"कहलाया है कि अगर आप लोग उसे जिन्दा देखना चाहते हैं तो किसी तरह वहां से निकालें !…"

"पर हम क्या कर सकते हैं। उसने खुद ही तो अपने सिर पर पत्थर मारा ! घरू औरत बनने चली थी मूर्खा !" कावेरी भुनभुनाई। इस भुनभुनाहट में रत्ना के प्रति क्रोध और झल्लाहट थी, किन्तु उपेक्षा नहीं।

"जो हुआ, सो हुआ। अब उसे मौत से बचाने की बात सोचो !" माला बोली।

और कावेरी चुप हो गई। चुप न रहे तो क्या करे ? कुछ सूझता ही नहीं है। विवाहिता औरत को भगा लाना भी ठीक नहीं है। रत्ना भगवाली तो है नहीं। उसने लग्न किया है। उसी तरह, जिस तरह घरों में लग्न होता है। रत्ना को ले आने का मतलब होगा कानूनी पैंतरेबाजी, और यह पैंतरेबाजी निश्चय ही मुकुन्दराव के पक्ष में पड़ेगी। नेता ठहरा। छोटी-बड़ी दस जगह पर उसकी जान-पहचान है। कावेरी कहां-कहां भुगत सकेगी उसे !

माला, जगन्नाथ, अण्णाजी सब यही सोच रहे हैं—इसी तरह सोच रहे हैं। हतभागिनी रत्ना !…

बालाजीराव बार-बार कह रहा था कि रत्ना की जान खतरे में है।…वे सब समझ रहे हैं कि वह ठीक कह रहा है, किन्तु कर क्या सकते हैं ? कितने लाचार ?

जगन्नाथ को सूझ गई थी योजना। बोला, "शंकरराव मदद नहीं दे सकता क्या ?"

कौन ? बेलापुरकर ?" बालाजी ने बीच में ही पूछा।

"हां।"

"उससे जान-पहचान है ?"

"खूब अच्छी तरह। भाई का जरा इशारा हुआ तो जान लड़ा सकता है वह।"

कि बेलापूरकर और मुकुन्दराव में इन दिनों काफी ऊंची पड़ी हुई है। बेलापूरकर के खिलाफ चुनाव में खड़ा हुआ है मुकुन्दराव। और मुकुन्दराव से दस गुना भारी पड़ेगा बेलापूरकर। नेताओं में उसकी भी जान-पहचान है। इस मामले में उससे ज्यादा अच्छा मददगार नहीं मिलेगा।

"तो बस, उसीके पास चलते हैं।" अण्णा ने कहा।

कावेरी को भी लगा कि ठीक है। माला भी खुश हुई। रास्ता निकल आया है अब सब कुछ ठीक हो जाएगा।

दोपहर को बालाजी, अण्णा, माला, कावेरी और जगन्नाथ बेलापूरकर के पास जा पहुंचे। सारा किस्सा कह सुनाया। बेलापूरकर ने चुपचाप सुना और सोच में पड़ गया। कावेरी से बहुत पुराने सम्बन्ध हैं। कभी किसी बहुत महत्त्वपूर्ण काम के लिए उसने नहीं कहा है और आज जब कहा है तब यह काम बेलापूरकर को कठिन लग रहा है···इसलिए कि रत्ना के मुकुन्दराव के पास रहने से ही बेलापूरकर को लाभ है। जाति के वोट मुकुन्दराव नहीं ले सकेगा। रत्ना हथियार की तरह बेलापूरकर के हाथ में है। यही दांव है, जिसके कारण मुकुन्दराव उलझा हुआ है और बेलापूरकर का पलड़ा भारी है···छोटी जाति के वोट भले ही मुकुन्द ने कमा लिए हों, पर रत्ना से विवाह कर उसने उच्च वर्ग को गंवा दिया है··· ऐसे समय पर मुकुन्दराव से रत्ना को अलग करने का मतलब है, अपने पैरों पर आप कुल्हाड़ी मार लेना। कितना असमर्थ है बेलापूरकर। वह देर तक चुप रहा था।

वे सब उसके चेहरे की ओर इस तरह देख रहे थे जैसे मन्दिर में मूर्ति की ओर देखा जाता है। तन्मय, श्रद्धा-भाव से और शांत। एक तरह का ईश्वर ही है। ज़रा-सा इशारा देगा और रत्ना उऋण। बिलकुल रामजी का अंगूठा—छूते ही अहिल्या तर जाएगी !

बेलापूरकर ने एक सिगरेट सुलगाई। माथे पर सिकुड़नें पैदा कीं। कोई न कोई ऐसा जवाब देना पड़ेगा, जिससे कावेरीबाई को भी न खले और न बेलापूरकर को घाटा हो। बोला, "मैं तो तुम्हारे लिए पूरी तरह हाजिर हूं, पर कानून आड़े आता है। रत्ना अभी उसके हाथ में है। जो

चाहे जैसा बयान उससे दिलवाया जा सकेगा। अगर वह अपने हाथ में होती तो शायद कुछ हो सकता !···हो क्या सकता, सब हो जाता !"

कावेरी समझी नहीं। बोली, "जो कुछ हो, यह काम तो तुम्हें ही करना है शंकरराव !····"उसे स्वयं ही मालूम न हुआ कि कब उसकी आवाज भर्रा गई। उसने आंचल का किनारा पकड़ा और बेलापूरकर की ओर हिलाया, "मैं तुमसे भीख मांगने आई हूं, किसी तरह मेरी रत्ना को उस नरक से निकलवा दो !···"

बेलापूरकर हिल गया। पर ज़रा-से भावावेश में मूर्खता तो नहीं कर सकता है वह। फिर भी इतना निश्चित कर लिया कि चुनाव खत्म होते ही मुकुन्दराव की कैद से रत्ना को छुड़वा देगा, पर इस समय तो कुछ भी नहीं किया जा सकता। उसने कह भी दिया, "मैं सब जानता हूं कावेरी ! पर क्या करूं। ऐसे मामले में हाथ डालते समय दस तरह सोचना-समझना पड़ता है। तुम नहीं जानतीं कि किसीकी घरू औरत को उड़वाना या उसके घरवाले से दूर करवाना कितना बड़ा जुर्म है। मामला कोर्ट-कचहरी में उछल जाएगा और जब जाएगा तो दस कानूनी दांव-पेच लगेंगे। उस वक्त अपने हाथ-पैर बचाने पड़ेंगे। वक्त खराब है। सब तरह सोच-समझकर काम करना पड़ता है। जल्दबाज़ी करने से कोई बात नहीं बनती !"

जगन्नाथ ने कहा, "क्या ऐसा नहीं हो सकता कि रत्ना को पहले अपने काबू कर लिया जाए और फिर पुलिस में रिपोर्ट दे दी जाए कि मुकुन्दराव परेशान करता था, इसलिए वह उसे छोड़ आई है।"

"ठीक है, मगर यह काम हवा में तो हो नहीं जाते ! दस-बीस दिनों तक योजना बनानी पड़ती है। अभी तो कोई बात हो नहीं है।" बेलापूरकर ने कहा।

"यह ज़िम्मेदारी मेरी रही !" बालाजी बोला, "मैं रत्ना को घर से निकालकर सड़क तक पहुंचा दूंगा, फिर उसे थाने तक ले जाना आपका काम !"

बेलापूरकर ने उसे ध्यान से देखा, जैसे कहा हो—औरत उड़ाने की बात ऐसे कर रहा है, जैसे पतंग उड़ाना हो !···बचा कहीं का !

जगन्नाथ बोला, "ऐसा कैसे हो सकता है ? मुकुन्दराव की हवेली से

उसे बाहर निकाल पाना हंसी-मजाक नहीं है। फिर जब वह एक बार भाग चुकी है तो वह सब उसपर बहुत ध्यान रखते होंगे !"

"पर मैं कह रहा हूं ना कि यह ज़िम्मेदारी मेरी रही।" बालाजी ने कहा।

"पर किस तरह क्या करोगे, यह भी तो बताम्रो।" बेलापूरकर ने पूछा।

बालाजीराव ने कार्यक्रम बता दिया, "गांव से कच्चा रास्ता आधी रात को भागकर तय करना पड़ेगा। पक्के रास्ते पर एक जीप का इन्तज़ाम होना चाहिए। एक बार रत्ना जीप में सवार हो गई तो फिर हाथ नहीं आएगी।"

"मगर रात को निकलेगी कैसे हवेली से ?"

"निकल जाएगी। रत्ना ने इसका बन्दोबस्त कर लिया है। पूरी योजना बना ली है। सिर्फ़ पक्के रास्ते पर जीप मिलनी चाहिए !" बाला-जी ने कहा।

"ठीक है। जीप का इन्तज़ाम मैं करवा दूंगा।" बेलापूरकर ने कहा।

"बस तो ठीक है।" जगन्नाथ निश्चित हो गया, "तुम गांव जाकर रत्ना से कह दो कि तैयारी करे।"

"जल्दी मत करो।" बेलापूरकर बोला, "यह काम कम से कम आठ दिन बाद होना चाहिए। मेरा चुनाव हो जाए, उसके बाद। जीप भी नहीं इस वक्त।"

"जीप तो किराये से भी मिल सकती है।" माला ने तर्क किया।

"मिल सकती है, पर ऐसे मामले में आदमी भरोसे का होना चाहिए।" बड़ी सफ़ाई से बेलापूरकर ने माला का तर्क उड़ा दिया। जानता है कि चुनाव के बाद ही मामले में उलझना ठीक रहेगा। उससे पहले बिलकुल वक्त नहीं है। और वह यह भी जान रहा है कि ये सब उसकी पर आमादा हैं।

तर्क में जान थी। सबने स्वीकार किया कि बेलापूरकर सही कहता है। बालाजी ने एक गहरी सांस ली। पूछा, "ठीक है, पर मुझे आप लोग ... । जीप कब मिल सकेगी ?"

बेलापूरकर ने अंगुली के पोरों पर हिसाब लगाया, "आज क्या है ?
"गुरुवार···गुरुवार है। उन्नीस तारीख।" जगन्नाथ ने कहा।
"उन्नीस, बीस, तेईस, पच्चीस। पच्चीस को चुनाव है। बेलापूरक ने कहा, "मैं सत्ताईस को जीप दे सकता हूं।"
"ठीक है। सत्ताईस की रात को बारह बजे के बाद जीप पक्की सड़क पर पहुंच जाएगी। क्यों साब ?" बालाजी ने पूछा।
"पहुंच जाएगी !" बेलापूरकर ने उसे आश्वस्त किया।
"बिलकुल ठीक। एक बजे मैं रत्ना को लेकर पक्की सड़क पर पहु जाऊंगा।" बालाजी ने कहा।
"बड़ी कृपा है आपकी !" उठने से पहले जगन्नाथ ने आभार व्य किया।
"कृपा कैसी ?" बेलापूरकर बोला, "यह तो कर्तव्य है भाई ! ध का काम है। मुसीबत में किसीके काम आए, वही तो आदमी है !"
कावेरीबाई ने हाथ जोड़े। वापस हो लीं। पीछे-पीछे वे सब। सो रही थी कावेरी—लुच्चा कहीं का !"···ज़रा-से काम में इतने तो नख किए और अब आदमी बन रहा है। शंकरराव को खूब जानती है व इंच-इंच। ज़रूर इसमें भी कोई न कोई स्वार्थ देख रहा होगा।
बाहर आकर बालाजी ने टिप्पणी की, "आदमी भला है !"
माला हंसी, "हां, भला ही समझो !"

अंधेरा गहरा था। रत्ना ने कुंडी खोलकर देखा—बालाजी खड़ है। सिर्फ एक आकार। चेहरे पर क्या है, यह देख सकना कठिन। जं धुकधुका रहा था—क्या मालूम, कावेरी का क्या सन्देशा लाए। कावेर के स्वभाव का कोई निश्चित नहीं है। बिगड़कर यह भी कह सकती थ कि भाड़ में जाए रत्ना। मर रही है तो मरे, मुझे क्या। और रत्ना ह क्यों अपेक्षा कर रही है ? रत्ना ने कावेरी के लिए कब क्या किया है वि जो कावेरी आज उसकी सहायता करे ?
"सब ठीक हो गया है।" बालाजीराव फुसफुसाया। पूरा किस्स

सुनाने का न तो वक्त है, न वातावरण। संक्षेप में बात खत्म की, "सत्ताईस तारीख है। सत्ताईस की रात को निकलने का प्रोग्राम रखा है। और पक्की सड़क पर तैयार मिलेगी।"

रत्ना बहुत ध्यान देकर सुनती रही और हर पल अविश्वास से घिरी रही —क्या सच ही कावेरी ने उसके लिए बन्दोबस्त करवाया है। पूछ भी लिया था उसने, "भाई से क्या कहा था तूने ?"

"सब कह दिया था।..." बालाजी ने बात पुनः संक्षिप्त की, "सब कुछ बता दिया था और फिर यही इन्तजाम हुआ है। सत्ताईस को तैयार रहना।"

"मगर..."

"मगर-मगर का वक्त नहीं है। बाकी बात फिर होगी।" सत्ताईस को ठीक बारह बजे मैं विश्वनाथ बाबा के मंदिर पर यहीं मिलूंगा। फिर तुझे पक्की सड़क तक छोड़ दूंगा।"

"और बाद में ?"

"जीप होगी वहां। उसमें कोई न कोई रहेगा—कावेरीबाई, माला या उसका...वह। क्या नाम है उसका ?"

"जगन्नाथ।"

"हां, जगन्नाथ।" बालाजी ने कहा। फिर बोला, "मैं चलता हूं।"

देखती रह गई रत्ना—वह चला गया। अंधेरे में फैला हुआ आकार। एक गहरी सांस ली। दरवाजा बन्द किया और अपनी जगह आ गई। मुकुन्दराव सोया हुआ है। रत्ना का मन हुआ कि हंसे। मूर्ख !... समझता है कि रत्ना को कैद किए रहेगा। पहली बार रत्ना ने महसूस किया कि उसमें जीवन है। जीवन का उत्साह भी है। जैसे-जैसे सत्ताईस तारीख करीब आएगी, यह उत्साह बढ़ता जाएगा...बढ़ता ही जाएगा !

और बढ़ता ही गया था उत्साह !...सत्ताईस तारीख। रात बारह बजे। बालाजीराव। विश्वनाथ बाबा का मंदिर। दौड़ का एक और दिन।

कच्चे रास्ते से पक्के पर। फिर जीप में सवार होकर पुरानी दुनिया में वापस! कितना कुछ देख-सह चुकी है इस बीच। लगता है कि यह एक साल आठ माह का अर्सा एक मोटी किताब में लिखा हुआ सामने रखा है—रत्ना को कंठस्थ है। एक-एक शब्द, एक-एक दृश्य।

यह सुबह से ही बहुत खुश थी। हर काम में फुर्ती और उत्साह। मारोती और मुकुन्दराव बार-बार मुसकराकर एक-दूसरे से कुछ कह-सुन लेते थे। शायद वे समझ रहे थे कि रत्ना उसके लिए खुश है। चुनाव जीतने की खुशी। दो वोट से जीतकर मुकुन्दराव सरपंच हो गया है। कल सारे गांव में उसका जुलूस निकलता रहा, फिर उसने मीटिंग में भाषण दिए। औरों ने भी दिए, पर हार-फूल सिर्फ मुकुन्दराव के गले में पड़े थे। आज पार्टी है। पिया-पिलाया जाएगा।

यह और भी अच्छी बात है। मुकुन्दराव बिलकुल बेसुध पड़ा रहेगा। इस सारी बेसुधी का लाभ उठाकर रत्ना बड़े आराम से निकल जाएगी।

मारोतीराव कोने में खड़ा हुआ था। अंग्रेज़ी शराब की बोतलें मंगवाई हैं। साथ में सोडे की शीशियां। पार्टी सही-सभा शुरू हो जाएगी। तहसीलदार, हैडमास्टर, पच, थानेदार, न जाने कितने लोग आएंगे। दस बजे पार्टी खत्म कर देनी है। एक पंच ने नाच-गाने का प्रोग्राम रखा है। सब लोग वहां जाएंगे। घर पर रहेगी अकेली रत्ना। सखूबाई दो दिन के लिए पास के गांव की एक रिश्तेदारी में गई है। मारोतीराव और मुकुन्दराव ने रत्ना के एकांत के बारे में सोच-समझ लिया था। क्या उसे घर में अकेली छोड़ जाना ठीक है?

"खतरा तो है। उसका विश्वास नहीं।" मुकुन्दराव ने कहा था।

"पर मुझे लगता नहीं है कि वह ऐसा करेगी।"

"क्यों नहीं कर सकती? यह तो खुला मौका है।" मुकुन्दराव बोला, "घर खाली होगा। किसीका डर नहीं। जो जी चाहे करे। मन हो तो जेवर भी ले जाए। सब कुछ तो उसके हाथ में होगा।"

मारोती चुप रहा।

"ताला जड़ जाना चाहिए बाहर से!" मुकुन्दराव ने कहा।

"लोग क्या कहेंगे?"

"कहनेवालों की परवाह कौन करे ? लोग तो कहते ही रहते हैं माऊ !"

"मगर…"

"मगर क्या ! निकल गई तो लोग ज्यादा कहेंगे।"

"क्या कहेंगे ?"

"यही कि…मेरा मतलब है, सारी इज्जत धूल में मिल जाएगी !"

"और उस समय इज्जत धूल में नहीं मिलेगी जब उसे ताले में बंद करना लोग देखेंगे ?" मारोती ने कुछ परेशान होकर पूछा, "लोग उस वक्त नहीं समझ लेंगे कि औरत काबू में नहीं है। बंद करके रखनी पड़ रही है।"

इस बार मुकुन्दराव निरुत्तर हो गया।

"औरतें इस तरह नहीं रखी जातीं मुकुन्दराव ! इस तरह तो कुत्ता भी नहीं रहता। जोर-जबरदस्ती से तुम उसे कितने दिन रख पाओगे ?"

मुकुन्द चुप है।

मारोती ने कहा, "उसे खुली छोड़ दो। जाना चाहे तो जाए। चली भी जाएगी तो ऐसा क्या बिगड़ जाएगा ? चुनाव तो हो ही चुका है। अब क्या घाटा ?"

मुकुन्द को लगा, ठीक है—चली भी जाए तो क्या नुकसान है ! उलटे मुक्ति ही मिल जाएगी। बदमाश औरत का क्या भरोसा ? जोर-जबरदस्ती से रखी भी गई तो किसी दिन ऐसा काला टीका सरपंच के उजले माथे पर लगा जाएगी, जो जिन्दगी-भर साफ नहीं होगा। अचानक उसके भीतर से किसीने पूछा, 'क्या सच ही उसका माथा उजला है ?' मारोती कह रहा था, "न भी गई तो जिन्दगी-भर फायदा देती रहेगी। यह भी साबित हो जाएगा कि औरत वफादार है !"

और मुकुन्द चुप हो गया। चुप यानी मारोती के विचार पर स्वीकृति। इस निर्णय के बाद दोनों निश्चिन्त हो गए थे, उतने ही निश्चिन्त जितनी रत्ना है।

मारोतीराव ने बोतलें गिनीं और रत्ना से कह दिया कि आदमी मांगने आए तो तीन बचा रखे। शहर से मंगवानी पड़ती हैं। सरपंच का

घर है। न जाने कब किस तरह का आदमी आ जाए। पार्टीवालों को क्या ! मुफ्त का माल समझकर सारी की सारी डकार जाने की फिक्र में रहेंगे ! मुकुन्दराव का स्वभाव जानता है मारोती। बड़ी फैयाजदिली दिखाता है। वह नेतागिरी ही क्या जो कमर की धोती उतरवा दे। नेता-री तो वह कि साल-भर में सारा घर चमचमा उठे।

शाम झुकने लगी है। बैठक में फर्श बिछवा दिया। रत्ना ने दो-तीन तरह का नमकीन तैयार कर दिया था। मीट भी। पीने के साथ ऐसी चीजें जरूरी होती हैं। प्लेटें, कांच के गिलास, सौंफ, इलायची—सबका बन्दोबस्त।

अब प्रतीक्षा है कि आदमी आएं और पार्टी शुरू हो। रत्ना ने पल्लू से पसीना पोंछा और कमरे में आकर बैठ रही। बैठक में इक्का-दुक्का लोग आने भी लगे हैं।

सत्ताईस !···एक बार फिर रत्ना ने तारीख याद की और निश्चिन्त हो ली। मुक्ति के क्षण पास और पास आते जा रहे हैं। कुछ घंटे और···

मुकुन्दराव आया, "सब तैयार है ना ?"

"हां, तैयार है।"

"तो बस, मैं आदमी भेजता हूं। एक-एक कर भिजवाना। पन्द्रह प्लेटें नमकीन की और छह बोतलें। बारह सोडा।" वह जाने लगा। रत्ना भी आदेश-पालन में उसके पीछे हो ली। अचानक मुकुन्दराव फिर मुड़ा। आवाज में लचीलापन पैदा किया। कहा, "नौ-दस तक निबट जाएंगे। उसके बाद हमें विनायक अवधूत के यहां जाना है। घर में सिर्फ तू रहेगी। ज़रा सावधानी से रहना !"

रत्ना परेशान हुई, यह तो बड़ी गड़बड़ है। अगर पीकर यह सोएगा नहीं तो रत्ना किस तरह निकल सकेगी ? पूछा, "लौटोगे कब तक ?"

"दो-तीन तो बज ही जाएंगे।" मुकुन्दराव ने कहा, "खाना होगा, फिर नाच-गाना है। तीन बज जाएंगे। तू भीतर से ताला देकर सो जाना। ठीक है।"

रत्ना चुप रही। आश्वस्त हो गई है कि वह देर से आएगा। तब तक रत्ना सब में पहुंच चुकी होगी !···

"कहनेवालों की परवाह कौन करे ? लोग तो कहते ही
माऊ !"

"मगर..."

"मगर क्या ! निकल गई तो लोग ज्यादा कहेंगे।"

"क्या कहेंगे ?"

"यही कि...मेरा मतलब है, मारी इज्जत धूल में मिल जा

"और उस समय इज्जत धूल में नहीं मिलेगी जब उसे
करना लोग देखेंगे ?" मारोती ने कुछ परेशान होकर पूछा,
वक्त नहीं समझ सके कि औरत काबू में नहीं है। कैद करके
रही है।"

इस बार मुकुन्दराव निरुत्तर हो गया।

"औरतें इस तरह नहीं रखी जातीं मुकुन्दराव ! इस तर
भी नहीं रहता। जोर-जबरदस्ती से तुम उसे कितने दिन रख

मुकुन्द चुप है।

मारोती ने कहा, "उसे खुली छोड़ दो। जाना चाहे तो ज
भी जाएगी तो ऐसा क्या बिगड़ जाएगा ? चुनाव तो हो ही चु
क्या घाटा ?"

मुकुन्द को लगा, ठीक है—चली भी जाए तो क्या नुकसान
मुक्ति ही मिल जाएगी। बदमाश औरत का क्या भरोसा ?
दस्ती से रखी भी गई तो किसी दिन ऐसा काला टीका सरस
माथे पर लगा जाएगी, जो जिन्दगी-भर साफ नहीं होगा। अच
भीतर से किसीने पूछा, 'क्या सच ही उसका माथा उजला है
कह रहा था, "न भी गई तो जिन्दगी-भर फायदा देती रहेगी
साबित हो जाएगा कि औरत वफादार है !"

और मुकुन्द चुप हो गया। चुप यानी मारोती के विचा
कृति। इस निर्णय के बाद दोनों निश्चिन्त हो गए थे, उतने
जितनी रत्ना है।

मारोतीराव ने बोतलें गिनीं और रत्ना से
तो तीन बचा रखे। शहर से

घर है। न जाने कब किस तरह का आदमी आ जाए। पार्टीवालों को क्या ! मुफ्त का माल समझकर सारी की सारी डकार जाने की फिक्र में रहेंगे ! मुकुन्दराव का स्वभाव जानता है मारोती। बड़ी फैयाजदिली दिखाता है। वह नेतागिरी ही क्या जो कमर की धोती उतरवा दे। नेतागिरी तो वह कि साल-भर में सारा घर चमचमा उठे।

शाम झुकने लगी है। बैठक में फर्श बिछवा दिया। रत्ना ने दो-तीन तरह का नमकीन तैयार कर दिया था। मीट भी। पीने के साथ ऐसी चीजें जरूरी होती हैं। प्लेटें, कांच के गिलास, सौंफ, इलायची—सबका बन्दोबस्त।

अब प्रतीक्षा है कि आदमी आएं और पार्टी शुरू हो। रत्ना ने पल्लू से पसीना पोंछा और कमरे में आकर बैठ रही। बैठक में इक्का-दुक्का लोग आने भी लगे हैं।

सत्ताईस !···एक बार फिर रत्ना ने तारीख याद की और निश्चिन्त हो ली। मुक्ति के क्षण पास और पास आते जा रहे हैं। कुछ घंटे और···

मुकुन्दराव आया, "सब तैयार है ना ?"

"हां, तैयार है।"

"तो बस, मैं आदमी भेजता हूं। एक-एक कर भिजवाना। पन्द्रह प्लेटें नमकीन की और छह बोतलें। बारह सोडा।" वह जाने लगा। रत्ना भी आदेश-पालन में उसके पीछे हो ली। अचानक मुकुन्दराव फिर मुड़ा। आवाज में लचीलापन पैदा किया। कहा, "नौ-दस तक निबट जाएंगे। उसके बाद हमें विनायक अवधूत के यहां जाना है। घर में सिर्फ तू रहेगी। जरा सावधानी से रहना !"

रत्ना परेशान हुई, यह तो बड़ी गड़बड़ है। अगर पीकर यह सोएगा नहीं तो रत्ना किस तरह निकल सकेगी ? पूछा, "लौटोगे कब तक ?"

"दो-तीन तो बज ही जाएंगे।" मुकुन्दराव ने कहा, "खाना होगा, फिर नाच-गाना है। तीन बज जाएंगे। तू भीतर से ताला देकर सो जाना। ठीक है।"

रत्ना चुप रही। आश्वस्त हो गई है कि वह देर से आएगा। तब तक रत्ना सब में पहुंच चुकी होगी !···

"क्यों, क्या डर समेगा ?" मुकुन्दराव ने पूछा।

"नहीं-नहीं, मैं···मैं ताला लगा लूंगी।"

मुकुन्द ने कुछ नहीं कहा। लोट पड़ा। उसे पाश्चर्य है। ऐसे कह रही है, जैसे सचमुच डरती है। डरती होती तो पकेले भागने की हिम्मत कर सकती थी ? हरामी बदमाश !···उसने रत्ना के लिए मन ही मन एक गाली दी।

रत्ना ने सामान उसी तरह बैठक में पहुंचाना प्रारम्भ कर दिया, जैसे मुकुन्दराव ने कहा था। यह सोचकर वह और भी उत्साहित थी कि अब उसे चोरी भी नहीं करनी होगी। पहरने में सोना ताने हुए हवेली से रवाना हो जाएगी। बेवकूफ मुकुन्दराव !···पूछता था कि तुम्हें डर लगेगा क्या ? कितना बनता है ? जैसे सचमुच बड़ा प्यार करता है। हरामी !

बैठक में से शोर उबल-उबलकर बाहर माने लगा है। बड़बड़ाहटें, हंसी और ठहाके ! अभी शराब गले में और उतरेगी और वे और-और शोर मचाने लगेंगे।

मारोतीराव दो-तीन खाली प्लेटें लेकर आंगन में आया। कहा, "रत्ना, इनमें थोड़े···" शब्द अधूरे रह गए मारोतीराव के। देखा कि रत्ना उठते-उठते माथा थामकर रह गई। वह खुद भी नहीं समझ पाई थी कि क्या हो गया है। बस, एक क्षण में आंगन, मारोती, प्लेटें सब कुछ घूमता-सा लगा और फिर धम् से धरती पर बैठकर रह गई।

"क्या हुआ ?" मारोतीराव लपककर करीब पहुंचा। इस बीच तक रत्ना लेट चुकी थी। उसे उठाने की कोशिश करता हुआ मारोती झक-झोरने लगा, "रत्ना !··· रत्ना !···"

पर वह वैसी ही बेसुध।

घबराकर मारोती चिल्लाया, "मुकुन्द !···मुकुन्दराव !"

मुकुन्दराव भीतर आया और इससे पहले कि मारोती कुछ कहे, वह तुरन्त रत्ना के करीब आ झुका। सारा नशा हिरण हो गया है। क्या हुआ उसे ?

"बस, अभी ठीक थी···और अभी ही···" मारोती अधूरे-अधूरे शब्द

बोल रहा है, "बुला डाक्टरों को !··· जल्दी !···

मुकुन्द दौड़ा हुआ भीतर आया—बैठक में। यह भी अच्छा है कि डाक्टर आया हुआ है। जाकर घबराए स्वर में बोला, "जरा चलिए, डाक्टर साब !··· रत्ना बेहोश हो गई है। जाने क्या हुआ ?"

ठहाके, हंसी, मुसकानें, टिप्पणियां, सब गायब। अभी ऐसी ज्यादा भी तो नहीं पी थी। एक-एक, दो-दो पैग। यह क्या रसभंग हुआ।

डाक्टर उठकर मुकुन्द के पीछे-पीछे आंगन में आ गया। शेष सभी बैठक में हैं। पुराने तौर-तरीकोंवाला घर है। इस तरह जनाने तक नहीं जा सकते।

मारोती ने कहा, "इसे उठाकर चारपाई तक ले चल !···"

मुकुन्द उठाने लगा। वह कुछ गुनगुनाने लगी थी। शायद बेहोशी टूट रही है। मुकुन्द उसे बांहों पर उठाए हुए चारपाई पर ले आया। डाक्टर ने नब्ज थामी। नब्ज ठीक चल रही है। रत्ना को भी थोड़ा-थोड़ा होश आने लगा है। दिमाग में घूम अब भी शेष है। इतना महसूस कर पा रही है कि कोई कलाई थामे हुए है। अब पेट देखने लगा है···तरेट तक···कुछ और भी नीचे···गुदगुदी !

मारोती और मुकुन्द घबराए हुए एक किनारे खड़े हैं। न जाने क्या बला आई। मुकुन्द को रत्ना की तबीयत से ज्यादा इस बात का मलाल है कि सारा प्रोग्राम बिगड़ा जा रहा है।

डाक्टर ने एक-दो मिनट की जांच-पड़ताल के बाद निश्चिन्तता की सांस खींची। मुसकराते हुए मारोती और मुकुन्दराव की ओर देखा। बोला, "बधाई सरपंचजी !··· आप पिता बननेवाले हैं !···

रत्ना आंखें खोल चुकी थी। चैतन्य भी हो चुकी थी। उसने भी सुना—पिता···यानी रत्ना मां बननेवाली है !···

मारोती ने एक गहरी सांस छोड़ी, "मैं तो बिलकुल घबरा ही गया था। बिठोबा, तू खुशी भी देता है तो किस तरह डराकर !"

मुकुन्द ने कुछ झेंप के साथ कहा, "चलो आऊ !···पार्टी में देर हो रही है। वहां सब लोग हमारी तरह ही घबराए हुए बैठे हैं।"

डाक्टर के साथ-साथ वे दोनों बाहर चले गए !···

और रत्ना मेटी-मेटी देखती रही। अविश्वास, दुख और मान की विचित्र-सी मिली-जुली प्रतिक्रियाएं अनुभव करती हुई—मां बने रत्ना ।··· मां ?

सारे शरीर में एक मीठी गुदगुदी भर आई है। मां !··· घुंघरू बज रहे हैं···पर कितना अलग स्वर है उनका ! अचानक उसने अपने-आ शरीर समेट लिया। क्यों, यह नहीं जानती। बैठ गई।

बाहर बैठक में अब इतने ऊंचे ठहाके उठने लगे थे कि दीवारें फा कर रत्ना तक चले आना चाहते हों। पर इन ठहाकों से भी ऊंचा अवि शोर करता हुआ एक स्वर रत्ना के भीतर भरा हुआ है—एक बच्चे अहसास···उसकी रुलाई का स्वर···उसकी कल्पनाएं···ममता का मो हुआ आसमान···

रत्ना मां बनेगी ! तमाशे की औरत ! डाक्टर कह गया है। निश्चि हो वह बीज गर्भ में रखे हुए है—मातृत्व का बीज !

"रत्ना !···

वह चौंक गई। कितने मीठे खयाल को तोड़ दिया किसीने ! उ दरवाज़े की ओर देखा—मारोती है।

"हम जा रहे हैं। कुण्डी चढ़ा ले भीतर से। देर से आएंगे।" मारो ने दरवाज़े से ही कहा और लौट गया।

रत्ना ने कुछ सुना, कुछ नहीं। मंत्रमुग्ध-सी आंगन में चली आ वे सब क्रमशः गलियारे में उतर गए थे। पीछे-पीछे मुकुन्दराव मारोती।

रत्ना ने एक गहरी सांस ली। अचानक उसे ध्यान आया कि आ सत्ताईस तारीख है !···

और रत्ना अकेली है···

कोई रोक-टोक नहीं है।···

रत्ना ने साकल चढ़ाई। बैठक में खड़ी रही। शराब की ख बोतलें, सोडावाटर, जूठी प्लेटें, सिकुड़ा हुआ फर्श···रत्ना का जी हुआ उन लोगों के लिए एक गाली सोचे, जो यहां पी रहे थे और ठहाके रहे थे ! पर नहीं सोचा उसने। क्या दे गाली ? मां बननेवाली है

कुलीन घर के रक्त को जनमा···*उसे लगा कि इस सारी पार्टी से* उसका मां बनना भी जुड़ा हुआ है। शायद इसीलिए इकट्ठा हुए ये सब लोग !··· न हुए होंगे तो किसी दिन होंगे और रत्ना मां बन चुकी होगी उस दिन···वह झुकी और उसने वह सब बटोरना शुरू कर दिया। जूठी प्लेटें, बोतल, गिलास···

पर क्यों बटोर रही है रत्ना ! उसका इस सबसे रिश्ता ही क्या है? जितना है, वह कुछ देर बाद टूटनेवाला है। सूत के कमजोर धागों की तरह। सत्ताईस तारीख है आज।

पर अजीब है रत्ना। इस सबके बावजूद वह सामान बटोरे ही जा रही है···

इसी नशे में उसने सामान बटोर डाला, फिर साफ किया। जहां का तहां रखा। कमरे का चादरा वगैरह व्यवस्थित किया और चारपाई पर आ लेटी। थकान बहुत है। सारे दिन काम करती रही है और अब इस *अहसास ने उसे और थका दिया है कि वह मां बनेगी*··· *बननेवाली है*···

जो होता है कि एक नींद ले ले। पर कैसे ले सकती है नींद? आज सत्ताईस तारीख है !···

टिक्···टिक्···टिक्···ग्यारह बज चुके हैं। एक घण्टा और··· बालाजीराव विश्वनाथ बाबा के मन्दिर पर होगा—रत्ना की प्रतीक्षा करता हुआ।

इस बार पक्का बन्दोबस्त है। पक्की सड़क पर एक जीप खड़ी होगी। जीप में माला या जगन्नाथ होंगे···

और रत्ना मां बननेवाली है !···

टिक्···टिक्···

रत्ना के लिए इससे अच्छा और कौनसा मौका आएगा? आराम-आराम से निकले और उसी तरह निर्द्वन्द्व चली जाए। कुत्ता गायब है !···

पर मां है रत्ना ?···

मारोती कह रहा था कि विठोबा खुशी भी देता है तो कितना डरा-कर !··· वे सब खुश हैं। खुश होने के ठहरे। रत्ना मां बनेगी। डाक्टर

ने कहा था—बधाई !···

बधाई रत्ना को !···

बालाजीराव सारा बन्दोबस्त कर चुका है। रत्ना ने ही तो कहल वाया था कि उसकी जान खतरे में है। सब मिलकर किसी तरह उसे इ नर्क से निकाल लें !

टिक्···टिक्···बाबा विश्वनाथ के मन्दिर पर पहुंचने में कम से कम पन्द्रह मिनट लगेंगे। यहां से पौने बारह बजते न बजते निकल जान होगा।

मगर मां ? रत्ना के भीतर बैठी हुई गुदगुदी। अपने स्वार्थ के लिए रत्ना क्या अपना गर्भ-बीज भी मिटा देगी ? यदि लड़का हुआ तो वह अण्णाजी की तरह नपुंसक बनकर जिएगा और लड़की हुई तो नर्तकी···दबी पलकें, घुंघरू, आहें, फब्तियां, शराब, बदलते हुए मर्द··· तमाशेवाली औरत ! रत्ना निर्णय के कगार पर खड़ी हुई है। कुछ मिनट हैं। इन मिनटों के भीतर उसे निर्णय ले लेना है। यहां या वहां ?

पर रत्ना अकेली नहीं है अब ! उसके साथ एक जीव है—उसके भीतर कुनमुनाता हुआ जीव !

क्या उसे भी रत्ना कांचघर में छोड़ देना चाहती है ?

टिक्-टिक्-टिक्···निर्णय जल्दी ही करना है। अभी, इसी वक्त !

पर क्या कह सकेगी रत्ना कि वह अविश्वास से घिरी रहे ? अक्षू और मुकुन्दराव घिनौने रिश्ते बनाए रहें और रत्ना उन्हें सहती रहे ?

और क्या यह सुनना चाहती रत्ना कि उसका होनेवाला बच्चा वह अपमानित, लांछित और पीड़ित जीवन जिए जो सामाजिक तौर पर एक कीड़े का समझ लिया गया !···

टिक्···टिक्···साढ़े ग्यारह हो चुके हैं। कुछ मिनट और !

रत्ना का होनेवाला बच्चा या तो अण्णाजी होगा या कावेरी !···

पर रत्ना यहां मर जाएगी !

मरेगी तो मर जाएगी, पर उसका बच्चा कांचघर से आज़ाद रहेगा। रत्ना के हाथ में है उसका लम्बा सफेद थान की तरह फैला हुआ सारा ··· । रत्ना चाहे तो एक पल के निर्णय में उसे वामी कर सकती है।

कोई मां कैसे कर सकती है दागी ?

पर···

पर नहीं !··· कुछ नहीं !··· रत्ना अब रत्ना से भी पहले मां है।

और यह कैद···

सब सहेगी रत्ना··· सब !···सफेद, निष्कलुष थान-सा बच्चे का भविष्य और रत्ना का निर्णय है रत्ना का नहीं, मां का !

रत्ना उठ बैठी। अकेली है। इतनी बड़ी हवेली। सन्नाटा। उसने ताला उठाया और जाकर मुख्य द्वार पर जड़ दिया। एक खयाल फिर आया था—बालाजी, माला, जगन्नाथ···सब उसकी प्रतीक्षा करेंगे।

पर रत्ना मां है ! सिर्फ मां !··· रत्ना के बदन में गुदगुदी फिर भर गई है। सारा बदन हल्का है। कपास की तरह और कानों में एक आवाज ! घुंघरुओं की नहीं, उतनी ही मृदु किलकारी की आवाज !

● ● ●